राष्ट्र-निर्माण
के
व्यावहारिक सुझाव

भूमिका लेखक

विद्वद्वर्य्य श्री अलगूराय शास्त्री एम० एल० ए०

एवम्

स्व० पूज्य श्री केवलानन्द जी महाराज

लेखक—

वेदव्याख्याता, साहित्यवाचस्पति, सिद्धान्त शास्त्री, काव्यतीर्थ

श्री किशोरी लाल गुप्त एम० ए०

रिटायर्ड भूतपूर्व प्रो० धर्मसमाज कालिज, अलीगढ़।

प्रख्यात रचयिता—

(संस्कृत-प्रबोध, बालवेदामृत, पंचवटी-परिचय, स्कन्दगुप्त-समीक्षा, अन्तर्नाद-निदर्श, मृत्युपर विजय, महर्षि दयानन्द का आदर्श जीवन-चरित्र आदि आदि)

प्रकाशक—

गोविन्द-ब्रदर्स

अलीगढ़ (यू० पी०

प्र० आवृत्ति २००० | संवत २००६ वि० जनवरी, १९५० ई० | मूल्य दस आना मात्र

मुद्रक:—
महावीर प्रसाद
प्रेम प्रेस, कटरा प्रयाग।

लेखक के दो शब्द

मेरी बहुत दिनों से यह हार्दिक इच्छा थी कि 'राष्ट्र-निर्माण' जैसे सामयिक और परमावश्यक विषय पर एक पुस्तक द्वारा अपने मनोगत भाव प्रकट करूँ, किन्तु कई अनिवार्य कारणवश न कर सका। १५ अगस्त सन् १९४७ ई० के बाद तो मेरी और भी प्रबल इच्छा हुई कि अब तो 'राष्ट्र-निर्माण के व्यावहारिक सुझाव' उपस्थित करने की आवश्यकता और भी अधिक अनिवार्य हो चली है।

दासता की निविड़ बेड़ियाँ यद्यपि छिन्न-भिन्न हो चुकी हैं, किन्तु राष्ट्र-पिता महात्मा गाँधी का राम-राज्य का सुख-स्वप्न और भी अधिक दूर भागा चला जारहा है। अन्धेर नगरी के नग्न-नृत्य चहुँ ओर दृष्टि-गत हो रहे हैं। जिसे देखो उसे स्वार्थ-साधन में रत है। देश जहन्नुम में चला जाय उसे रत्ती भर चिन्ता नहीं। सरदार पटेल, जौहरी जवाहर, राजाजी और ऋषि राजेन्द्र जैसे कुशल केवट यदि न होते तो भारतीय-राष्ट्र की नैय्या कभी की मँझधार में डूब गयी होती। भँवरों की भयङ्करता भरपूर बढ़ती चली जा रही है। चहुँ ओर काले बादलों के दल घुमड़ते दिखायी देते हैं। देश की आन्तरिक स्थिति गहनतर से गहनतम की ओर द्रुतिगति से चली जा रही है। ऐसी गम्भीर परिस्थिति में छोटे से बड़े तक देश के प्रत्येक व्यक्ति का क्या कर्तव्य है यही इस पुस्तक का मुख्य विषय है। विद्वद्वर्य श्री अलगूराय शास्त्री एम०-एल० ए०, एवम् स्वर्गीय पूज्य श्री केवलानन्द जी महाराज ने भूमिका रूपेण जो स्वर्ण-सम्मतियाँ पुस्तक के विषय में प्रदान की हैं उनके लिये मैं इन

दोनों महानुभावों का अत्यन्त आभारी हूँ। मुझे आशा है पाठक अपनी-अपनी रुचि के अनुकूल सामग्री प्राप्त कर, राष्ट्र के प्रति स्वकर्तव्य-पालन करने की अपूर्व स्फूर्ति-लाभ करेंगे। पुस्तक भी अपने ढंग की अकेली ही पाएँगे। भाषा सरल और हर किसी के समझने योग्य बनाने का प्रयत्न किया गया है जिससे प्रत्येक स्त्री-पुरुष थोड़ा-सा भी हिन्दी का ज्ञान रखने-वाला बड़ी आसानी से लाभ उठा सके। जितना ही अधिक जनता में इसका प्रचार होगा, उतना ही अधिक देश का कल्याण-साधन होगा ऐसी मेरी ध्रुव धारणा है।

हमें अत्यन्त शोक के साथ लिखना पड़ता है कि अपनी बहुमूल्य सम्मति प्रदान करने के थोड़े ही दिन पश्चात्, दिल्ली में, पक्षाघात से पूज्य स्वामी श्री केवलानन्द जी महाराज का स्वर्गवास हो गया।

वैदिक-आश्रम,
अलीगढ़।

विनीत—
किशोरी लाल

भूमिका

श्री किशोरीलाल जी एम० ए० एक सुप्रसिद्ध पुस्तक लेखक हैं। आपकी पुस्तकों की विशेषता यह है कि उनमें वैदिक-आदर्श की ओर विशेष दृष्टि रहती है।

प्रस्तुत पुस्तक 'राष्ट्र-निर्माण' के लिये जिन-जिन सामग्रियों की आवश्यकता है, जिन-जिन अंगों के विकास के बिना राष्ट्र का निर्माण संभव नहीं है—उन पर विशेष प्रकाश डाला गया है। विद्वान लेखक ने हृदय-स्पर्शी भाषा में सारगर्भित भावों का स्पष्टीकरण किया है। सफलता पूर्वक इस कृति को सम्पन्न करने के लिये मैं श्री किशोरी लाल जी को हार्दिक बधाई देता हूँ, और आशा करता हूँ कि पाठक इस उपयोगी पुस्तक से लाभ उठावेंगे—जिन-जिन अंगों से पाठकों का विशेष सम्बन्ध है वे उन-उन अंगों को सुपुष्ट बनाकर राष्ट्र-निर्माण के महान यज्ञ को पूर्ण करने में अपनी आहुतियाँ देंगे।

—अलगूराय शास्त्री एम० एल० ए०

श्री प्रो० किशोरीलाल जी गुप्त एम० ए० की परिमार्जित एवं ओजस्विनी लेखनी से लिखी गई 'राष्ट्र-निर्माण' नामक पुस्तक की हस्त-लिपि मैंने देखी है। इस पुस्तक के २७ प्रसंगों में से प्रत्येक अपनी पृथक उपयोगिता रखता है। गुप्त जी की लेखनी प्रसाद गुण-युक्त है। इस पुस्तक को पढ़ने से तो उसकी विशेष-रूप से अनुभूति होने लगती है। वर्तमान में ऐसी पुस्तकों की अत्यावश्यकता है। पुस्तक सामयिक एवं प्रत्येक के पढ़ने योग्य है।

—केवलानन्द सरस्वती

—:०:—

विषय-सूची

—:: ० ::—

"ओ३म"

१-राष्ट्र-निर्माण और माता-पिता

समाज और राष्ट्र व्यक्तियों से बनते हैं। व्यक्तियों के समुदाय को प्रजा के व्यापक नाम से भी पुकारा गया है। प्रजा वैसी बनती है जैसी प्रजापति बनाये। विश्वरूप समष्टि का प्रजापति परमेश्वर है। एक प्रजापति वह भी है जो मृत्तिका-मय संसार की रचना करता है। एक से एक सुन्दर घोड़ा, गधा, गाय, बैल, शेर, हाथी, कुत्ता, बिल्ली, मनुष्य, स्त्री, राजा, रानी सभी कुछ बना डालता है। जितने चाहे उतने राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, युधिष्ठिर, अंगद, हनुमान, बुद्ध, शंकर, दयानन्द और गाँधी आदि बना डाले। जितनी सुन्दर और असल से मिलती-जुलती नकल होगी उतनी ही मूल्यवान होगी और उतनी ही अधिक शोभा-वर्धिक होगी।

मानव समाज के प्रजापति भी तद्वत् सृष्टि-रचना करने की क्षमता रखते हैं। राम को राम विश्वामित्र ने बनाया। कृष्ण की सृष्टि सांदीपन ऋषि के गुरुकुल में हुई। गांडीवधारी अर्जुन को धनञ्जय गुरुवर्य्य द्रोणाचार्य ने बनाया। हनुमान को वज्र-अङ्गी बनाने वाली माता अंजना थी। शिवा को शेर-शिवा बनाने वाले समर्थ गुरु रामदास और कविवर भूषण थे। एक को सवालक्ष की शक्ति किसने प्रदान की? गुरु गोविन्द सिंह ने। चिड़ियों द्वारा बाजों का पराजय किसने कराया? गुरु गोविन्द सिंह ने। युवा मूलशंकर को महर्षि दयानन्द की परमोच्च पदवी किसने प्रदान करायी? प्रज्ञा-चक्षु तपस्वी साधु विरजानन्द ने। भारतीयों में

सर्व प्रथम स्वधर्म, स्वभाषा, स्वसंस्कृति और स्वराज्य की कल्याण-मयी कामनाएं किसने फिर से जागृत कीं ? जगद्गुरु दयानन्द ने। दयानन्दारोपित स्वराज-विटप के मधुर फल का आस्वादन किसने कराया ? गौरव-गरिमा के अवतार, सत्य और अहिंसा की साक्षात् प्रतिमूर्त्ति महात्मा गाँधी ने।

उपर्युक्त प्रश्नोत्तरों से सिद्ध है कि राष्ट्र के वास्तविक निर्माता कौन होते हैं। सर्व प्रथम स्थान इन निर्माताओं में 'माता' का है। माता ही निश्चय रूप से व्यक्ति की और इसीलिये राष्ट्र की 'निर्माता' है। भारतीय माताएं आज बहुत ही अल्प संख्या में शिक्षित हैं किन्तु जो भी इनी-गिनी शिक्षित हैं उन्हें अब कमर कस लेनी चाहिये। स्त्रियों में सफल-प्रचार स्त्रियाँ ही कर सकती हैं। उनके गुण-दोषों की चिकित्सा वे ही कर सकेंगी। अड़ौस-पड़ौस में स्त्रियों के सम्मेलन वे जब चाहेंगी, और जहाँ चाहेंगी। आसानी से बुला सकेंगी। उनके अंदर सुनागरिता के भाव कूट-कूट कर भरना हीं उसका काम है। उनमें से जो अध्यापिकाएँ हैं, उनका कर्तव्य तो और भी अधिक उत्तरदायित्व का है। यदि उनमें कौशिल्या और अंजनाएँ दृष्टिगत न होंगी, तो विश्वविजयी राम और उनके भक्त शिरोमणि महावीर के दर्शन असम्भव है। मुख्याध्यापिकाओं को तो अपने तईं आदर्श चरित्र बनना अनि-वार्य ही है।

दूसरा नम्बर राष्ट्र-निर्माण-कार्य में पिता का है। किन्तु आज का भारतीय पिता प्रायशः विलासी और बहुधन्धी है। जो धनी है वह अपने रागरंग और विलासिता में चूर है, या येनकेन प्रकारेण शुभ वा अशुभ, टके बटोरने में रत है। संतान उसकी बे-नकेल के ऊँट की भाँति मनमाना विचरण करती है। पिता को पता नहीं कि उसके बेड़े की भविष्य में क्या गति होगी ? मँझधार में डूबेगा, या कोई खेने वाला पार लगायेगा। ऐसी

दशा में उसका एक ही कर्तव्य रह जाता है कि वह अपनी प्रगाढ़ निद्रा से सजग हो जाय। पाकिस्तान-निवासी हमारे धनिक भ्राताओं के धन-धान्य और प्रचुर सम्पत्ति की क्या दशा हुई? उससे हम कुछ शिक्षा ग्रहण करें, और राष्ट्र-निर्माण के अनिवार्य कार्य में धन द्वारा राष्ट्र-निर्माताओं को सहयोग प्रदान करें। हमें भामाशाह की स्मृति अपने हृदय में जाग्रत करनी होगी। यदि भामाशाह ने अपने कर्तव्य में त्रुटि की होती, तो प्रताप सर्वदा के लिये अस्त हो जाता।

यूनियन गवर्नमेन्ट के सामने आज बड़ी बेढब समस्याएँ आ उपस्थित हुई हैं। हमारा जवाहर रूपी राणा प्रताप आज विलक्षण उलझनों में उलझा हुआ है। राष्ट्र-निर्माण कार्य के लिये उसे अवकाश ही कब मिलता है? फिर सारा भार उसके मत्थे क्यों मढ़ा जाय? गोवर्धन खड़ा करने में कृष्ण की केवल संकेतरूपी अँगुली काम करती थी। भार सारा व्रजवासियों ने ही वहन किया था हम आप भी उसे सहर्ष वहन क्यों न करें?

—:o:—

२—राष्ट्र-निर्माण और अध्यापक

पूर्व लेख में माता-पिता के कर्तव्यों पर यत्किंचित प्रकाश डाला गया था। माता-पिता के उपरान्त राष्ट्र-निर्माण में मुख्य स्थान आचार्य अर्थात् अध्यापक का आता है। वर्तमान समय के माता-पिता लगभग ६० प्रतिशत अशिक्षित मिलेंगे। उन बिचारों को पता नहीं कि राष्ट्र किस चिड़िया का नाम है? कांग्रेस और स्वराज शब्द उन्होंने सुने बहुत बार अवश्य हैं। झंडे लिये स्वयं-सेवकों की टोलियाँ भी गलियों में निकलती देखी हैं। महात्मा गांधी की जय। पं० जवाहर लाल की जय, भारत

माता की जय, आदि-आदि जय-घोष भी सुने हैं। गोरे चमड़े के अँगरेज भी अब पुलिस और कचहरियों में उन्हें दिखाई नहीं देते। यह भी उन्होंने सुन लिया है कि स्वराज मिल गया, तीन बार स्वराज-दिवस भी मना लिया। घर सजाये, बाजारों को सजा देखा, धूम-धाम देखी। सब कुछ देखा और सुना, किन्तु तत्त्व की बात एक न पायी। पननाला वहाँ का वहीं दिखाई दिया। गन्दगी और ग़लाज़त सब कहीं अधिक बढ़ गयी।

स्वराज के न जाने क्या क्या स्वप्न देखे थे। बड़े-बड़े सब्ज़-बाग़ों के नक़्शे सामने आते थे। सोचते थे क्षण भर में जादू-के डंडे से हमारा 'जवाहर' रौरव-नर्क को स्वर्ग के 'नन्दनवन' में बदल देगा, जिस कल्प-वृक्ष की छाया में जा खड़े होंगे, मन चाहे मधुर फल बात की बात में प्राप्त कर लेंगे। कामधेनुओं की कमी न रहेगी; सारी कामनाएं उनसे दुह लिया करेंगे। धन धान्य से देश क्षण मात्र में जगमगा उठेगा। कंट्रोलों का काला मुँह किया जायगा, ब्लैक को 'ब्लैक होल' में बन्द कर दिया जायगा। पूरा 'रामराज' बर्तेगा; कोई खटका शेष न रहेगा। लोगों का दृढ़ निश्चय था कि गोस्वामी तुलसीदास के वचन अब सिद्ध होंगे—

अर्कजवासपात बिन भएऊ। जिमि 'सुराज' खल उद्यम गएऊ॥

तुलसीदास जी की भविष्यवाणी अभी अंशशः कसौटी पर ठीक उतरी है। अर्क और जवास तो दैव-कृपा से दोनों पश्चिम को चम्पत हो गये, किन्तु 'खल का उद्यम' अभी शेष है, और ज़ोरों से उत्पात मचा रहा है। यह उत्पात वाह्य और अंतरीय दुतर्फ़ा जड़ पकड़ता जा रहा है। यदि इसी प्रकार परि-वर्धित होने दिया गया, तो परिणाम अत्यन्त ही घातक सिद्ध होगा।

इसके अतिरिक्त हमारे दुर्भाग्य से एक और दुर्घटना घट

गई। हमारे कतिपय नवयुवक यादव कुल की स्पर्धा करने लगे। अंतर केवल इतना ही है कि वे स्वयं लड़भिड़ कर नष्ट हुए, और इन्होंने अज्ञानता के नशे में वर्तमान युग के कृष्ण' को ही जीवन-लीला समाप्त कर डाली। संध्या समय नित्य विश्व को नवीन-नवीन पाठ पढाये जाते थे। 'विश्व-वीणा' का जौनसा 'तार' बेसुरा राग अलापता था, उसी की खूंटा धीमे से मरोड़ दी जाती थी। हाय ! अब खूंटी मरोड़ने वाला छिन गया ! अब सबको अपनी-अपनी ढपली और अपना-अपना राग अलापने की पूरी छुट्ट' मिल गया। अब कोई फ़र्याद का सुनने वाला दिखायी नही देता। ब्लैक की कालिमा-कथा उसके कानों तक पहुँची और उसने फौरन उसका उपचार किया। कांग्रेस के अधिकृत कर्मचारियों की बे-लगामी की भनक उसने सुनी और उसने मीठी फटकार लगा दी। किन्तु शोक! शोक !! महाशोक !!! अब वह 'फटकार' कोरी सपना मात्र रह गई। लोगों को अब किसका भय ?

इसका फल ? फल प्रत्यक्ष है। 'राम राज' समीप आने से रुक गया। विपरीत लक्षण दिखायी दे रहे हैं। खाद्य-पदार्थों के भाव नित्य बढ़ते चले जा रहे हैं। आशा थी कन्ट्रोलों के हटने से वस्तुस्थिति बदल जायगी किन्तु स्वार्थ बदलने दे, तब न ? प्रत्येक व्यक्ति ब्लैक में होड़ लगा रहा है। पाकिस्तान को शस्त्र और अन्य आवश्यक पदार्थ भेजने वाला कौन ? कोई गैर ? नहीं हम...और हमारे शासक। उच्च कोटि के न सही, बिचौलियों पर तो सदेह किया ही जा रहा है। 'यथा राजा तथा प्रजा' वाली कहावत शताब्दियों से कसौटी पर ठीक उतरती चली आ रही है। भला पुलिस सच्चे हृदय से और देश-भक्ति-भाव से भ्रष्टाचार को रोकना चाहे, और न रुके ? यह कौन नहीं जानता कि डिस्ट्रिक्ट और सिटी कंट्रोल राशनिंग ऑफीसर मालामाल हो

गये। जिन्होंने थैलियां झुकाईं, उन्हें किसी न किसी बहाने से मन-माना माल मिला और बेचारे असहाय टिप्याते रह गये। इस बात के समाचार क्या मिनिस्टरों के कान तक नहीं पहुँचे ? किन्तु ऊँची दूकान पर फ़ीका पकवान ही मिला। स्वर्गीय कवि 'हाली' पानीपती की अमर उक्ति याद आ गई :—

हमने सबका कलाम देखा है। अदब शर्त मुँह न खुलवाएँ॥

अतः घूम-घुमाकर, और सब ओर से निराश होकर मेरी दृष्टि अध्यापकों की ओर ही पहुँचती है। अत्याचारों, दुष्टाचारों, भ्रष्टचारों को समूल नष्ट करने का सत्य संकल्प भुजा उठाकर कोई 'राम ही कर सकता है। अब तुम्हें 'विश्वामित्र' बनना है। अपनी-अपनी कक्षाओं में 'रामो' की खोज करो। विश्वनियन्ता की इस विचित्र सृष्टि में किसी वस्तु का नितान्त अभाव नहीं, और न प्रलयान्त तक कभी होगा। हमारे बच्चे इसीलिये बाल गोपाल कहलाते हैं कि उनके अन्दर अनेकों राम, कृष्ण, भीम, अर्जुन, भीष्म, युधिष्ठिर, बुद्ध, शंकर, दयानन्द, शिवा, प्रताप गोविन्द रानाडे, गोखले, तिलक, गांधी, जवाहर, बोस, राजेन्द्र और पटेल जैसे न जाने कितने भरे पड़े हैं। ये सबके सब आकाश से नहीं बरसे, हम तुमसे ही हाड़-मांस के व्यक्ति थे, और हैं। स्वयं राष्ट्र-पिता महात्मा गांधी को ही ले लीजिये। वे स्वयं लिखते हैं कि बचपन मे वे बड़े डरपोक थे, भूतप्रेतों का रात को भय उन्हें सताता था। बुद्धि भी कुशाग्र न थी। बैरिस्ट्ररी पास करने इँगलेंड जाती बार विदाई-सभा मे एक वाक्य भी अंगरेज़ी का न बोल सके। नहीं, नहीं, बैरिस्टर बन कर भी हाकिम के सामने पहली बार बहस के लिये खड़ा न हुआ जा सका। फ़ीस मुवाकिल को वापिस करनी पड़ी। फिर ? फिर क्या ? कमर कसो ! स्वार्थ से स्नेह कम करो ! आलस्य

त्यागो ! ट्यूशनों को तिलांजलि दो। वेतन-वृद्धि के लिये सम्मिलित, संगठित और वैध रूप से माँग अधिकारियों के सामने रक्खो, क्योंकि यह सभी भली भाँति जानते हैं कि 'भूके भजन न होइ गोपालां। वस्तुओं का मूल्य पँचगुना-छगुना बढ़ गया है। रुपया अब ढाई आने की दर रखता है। जिसे पहले ५०) रुपये मिलते थे अब उसे २५०) रुपये ईमानदारी के साथ मिलने चाहियें, और जिसे २०) रुपये मिलते थे उसे १००) रुपये मासिक। इससे कम में शरीर और जीव की स्थिति कुटुम्ब में रखनी इस जमाने में असम्भव है। यार लोगों ने स्वयं अपने ५००) रुपये के स्थान में पाँच हज़ार तक सुरक्षित रख लिये हैं। और भत्ता पृथक ! किन्तु बन्धुओ ख़बरदार ! तुम इनकी स्पर्धा कदापि न करना। तुम्हें तो त्याग और तपस्या का ही अपना लक्ष्य सामने रखना है। नहीं तो 'राष्ट्र-निर्माण' स्वप्न की ही बात रह जायगी।

अतः क्या तो विद्यालय, क्या बाहर, क्या खेल का मैदान ! सर्वत्र एक ही धुन और एक ही लक्ष्य ! राष्ट्र-निर्माण ! राष्ट्र-निर्माण !! राष्ट्र-निर्माण !!! योजनाएँ सोचो ! स्वयं उनका परीक्षण करो ! अधिकारियों के सामने रक्खो। जनता को सरकार की सहायता के लिये प्रोत्साहित करो। कान्फ्रेंसों में आन्दोलन करो। याद रक्खो, देश के भावी शासक वे युवक न होंगे जो आज लेंडी कुत्तों की मानिन्द गन्दी गालियों में मारे-मारे घूमते देखे जा रहे हैं। देश का शासन कल उनके सुपुर्द होगा जो आज पूर्ण अनुशासन के साथ भक्ति-पूर्वक, योग्य गुरुओं के चरणों में, अध्ययन करते हुए अपने शरीर, मस्तिष्क और आत्मा को बलिष्ठ बनाने का उत्कट प्रयत्न कर रहे होंगे। उनका उचित प्रमार्ग-दर्शन तुम्हारे हाथों में है। उन्हें संयम और अनुशासन का परमावश्यक पाठ तुम्हारे सिवाय कौन पढ़ावेगा ?

किन्तु बन्धुवर्य्य ! पहले तुम्हें अपने तईं संयम और अनुशासन का अभूतपूर्व अभ्यास करना होगा। वेद भगवान ऐसे ही गंभीर अवसरों के लिये यह संकेत करते हैं।

अग्निना अग्निः समिध्यते ।

अग्नि ही अग्नि को प्रज्वलित करती है। बुझी राख से दीपक भी नहीं जलाया जा सकता। अपना आदर्श अपने शिष्यों के सामने रक्खो। प्रथम अपने दुर्गुण और दुर्व्यसन दूर करो, और फिर शिष्यों को उपदेश करने की सोचो। भगवान् श्रीकृष्ण ने व्यर्थ नहीं कहा—

यद्यदा चरित श्रेष्ठस्तत्त देवेतरो जनः ।
स यत्प्रमाणं कुरुते लोकस्तदनु वर्तते ॥

विद्यार्थियों की दृष्टि में तुम ही श्रेष्ठ हो। जैसा आचरण उनके सामने रक्खोगे, उसका अनुकरण अवश्य होगा। अब तक जो भूलें हुई सो हुई, आगे के लिये सचेत होने की आवश्यकता है। एक बात अन्त में और सुनलो—चापलूसी स्वप्न में भी कभी न करने की क़सम खालो। घर-घर पेट दिखाते मत फिरो। इसने तुम्हारा दर्जा समाज के अन्दर बहुत ही नीचा गिरा दिया है। अपना गौरव आप बनाए रखने का सर्वदा ध्यान रक्खो।

३—राष्ट्र-निर्माण और भारतीय-युवक

मनुष्य अनुकरणशील है। प्रकृति ने उसे मननशील भी बनाया है। उसका स्वयं नाम 'मनुष्य' भी इसीलिये पड़ा कि वह मननशील है। अपने माता-पिता और पूर्व-पुरुषों के कार्य-कलापों

का उसके चरित्र पर बड़ा प्रभाव पड़ता है। रामायण और महाभारत की कथाओं का प्रचार इसीलिये हुआ कि लोग अपने पूर्व-पुरुषों के वृतान्त जानने के लिये उत्सुक रहा करते थे। किन्तु अंगरेजी शासन ने इस स्फूर्ति-दायिनी प्रवृत्ति को बड़ा धक्का पहुँचाया। उसने शिक्षा का माध्यम ही बदल दिया। अंगरेजी ने बड़ी द्रुत-गति से घर-घर में घर करना प्रारम्भ कर दिया। लोग कालिदास, भवभूति, बाण और भैरवि के स्थान में शैक्सपियर, मिल्टन और शैली की कृतियों में आनन्द लूटने लगे। बिचारी हिन्दी का स्थान तो बहुत ही नीचा गिरा दिया गया। फिर 'सूर' और 'तुलसी की पूछ कहाँ? इतिहास भी दूषित किया गया। भगवान् राम और कृष्ण जो हिन्दू जाति के प्राण समझे जाते थे केवल काल्पनिक पुरुष बतलाये जाने लगे। जनता अन्धी होती ही है। वह लीडरों की मुखापेक्षी है और लीडरी रही अँगरेजी पढ़े बाबुओं के हाथ की वस्तु। अतः कथाओं की इतिश्री होना अवश्यम्भावी होना चाहिये ही था।

अँगरेजी शिक्षा का सब से घातक प्रभाव भारतीय नवयुवकों और युवतियों पर पड़ा। वे शकल-सूरत मे भारतीय भले ही रहे हों, लेकिन चाल-ढाल, वेष-भूषा और हाव-भावों में सोलह-आना अँगरेज बनने का प्रयत्न करने लगे। रहन-सहन और खान-पान तक में जमीन-आसमान का अन्तर पड़ गया। भारतीय अच्छाइयाँ भी तभी स्वीकार की जा सकती थीं जब उन पर विदेशीय प्रामाणिकता की मुहर-छाप लग लेती थी। कालिदास बिचारा उस समय तक निविड़-अन्धकार में पड़ा रहा, जब तक कि शकुंतला के अँगरेजी अनुवाद ने पश्चिमी दुनियाँ में तहलका नहीं मचा दिया। तुलसी की विदेशों में ख्याति का मूल-कारण भी ग्रिफित साहब ही हैं। न कि कोई भारतीय अनुवादक।

भारतीयों की नजर में तो अपना सर्वस्व ही हेय ठहरा दिया गया था।

भला करे स्वर्गीय दयानन्द सरस्वती, और विश्ववन्द्य महात्मा गाँधी का, जिन्होंने पश्चिमोन्मुख प्रचन्ड धारा का वेग पूर्वाभिमुख करने में भागीरथ प्रयत्न किया और बहुत कुछ सफलता भी प्राप्त की। हिन्दी भाषा का प्रचार दिन दूना और रात-चौगुना बढ़ा। संस्कृत भाषा की ओर भी लोगों की अभिरुचि जागृत हुई। प्राचीन आर्य-सभ्यता की ओर भी रुझान अवश्यम्भावी हुआ। १५ अगस्त १९४७ की स्वतंत्रता-प्राप्ति ने तो नक़शा ही बदल दिया। नवयुवकों की उमंगे तरंगें भरने लगी हैं। ऐसे अवसर पर उनके पथ भ्रष्ट होने की भी आशंका है। अतः मर्यादा पुरुषोतम राम के संयत जीवन पर यत्किंचित दृष्टि डालना हितकर होगा।

उपर्युक्त विषय पर आदि कवि वाल्मीकि ही अधिक विश्वसनीय होंगे। आइये, अपने नायक के यौवन-कालीन शरीर-सगठन का ही सर्व प्रथम निरीक्षण करें :-

विपुलांसो महाबाहुः कम्बुग्रीवो महाहनुः।
महोरस्को महेष्वासो गूढजत्रुररिन्दमः॥
आजानुबाहुः सुशिराः सुललाटः सुविक्रमः।
समः समविभक्ताङ्गः स्निग्धवर्णः प्रतापवान॥
पीन वक्षा विशालाक्षो लक्ष्मी वाच्छुभ लक्षणः।

युवा राम के कन्धे बड़े विस्तृत, शंखवत् तीन रेखा वाली सुडौल गर्दन, गोल और बड़ी ठोड़ी, चौड़ी विशाल छाती, बड़े धनुषधारी, कन्धों की हड्डियाँ छिपी हुईं, शत्रुओं के दमनकारी,

घुटनों तक फैली लम्बी भुजाएँ, सुन्दर बड़ा शिर, भव्य विस्तृत ललाट (माँथा), बड़े पराक्रमी, समस्त शरीर सुसंगठित, शरीर का वर्ण बड़ा सौम्य. बड़े प्रतापी, मोटी और उभरी हुई छाती, विशाल नेत्र और तेजस्वी शुभ लक्षणों वाले।

स्वतंत्र भारत के नौजवानों को भी अपना शारीरिक ढाँचा इसी प्रकार का ढालना होगा। अन्यथा बीसवीं शताब्दी के रावणों से मुठभेड़ में विजय पानी. दुष्कर होगी। ये असुर भी अब विद्युत अणुबम्ब गैसादि के उपयोग पर तुले पड़े हैं जिनका मुक़ाबला करना होगा। तृतीय विश्व युद्ध अनिवार्य है।

राष्ट्र-निर्माण के लिये केवल शारीरिक उन्नति ही प्रर्याप्त नहीं, अन्य स्थायो गुणों का संवर्धन भी परमावश्यक है। अरिंदम राम के इन उदात्त गुणों का अनुकरण भारतीय प्रजातंत्र राष्ट्र को स्थायी बनाने के लिये आवश्यक है :—

धर्मज्ञः सत्य सन्धश्च प्रजानांच हितेरतः।
यशस्वी ज्ञान सम्पन्नः शुचिर्वश्यः समाधिमान्॥
सर्व शास्त्रार्थ तत्वज्ञः स्मृतिमान् प्रतिभान वान्।
सर्वलोक प्रियः साधुरदीनात्मा विचक्षणः॥
सर्वदाभिगतः सद्भिः समुद्र इव सिन्धुभिः।
आर्यः सर्वसमश्चैव सदैव प्रिय दर्शनः॥

मजहबी दीवानों ने मजहब के नाम पर संसार में कैसे कैसे गजब ढाये, और आज भी ढा रहे हैं, इसका अब किसको अनुभव न होगा? इसका कारण धर्म के वास्तविक तत्व से अनभिज्ञता ही है। "धारणाद्धर्मः"। जिसके द्वारा जन-समाज

का भली भाँति धारण-पोषण होता रहे, हित और कल्याण साधन होता रहे, वह धर्म है। मारकाट, लूट-खसोट, अग्निकांड और स्त्री अपहरण घोर अधर्म है। राम सच्चे अर्थों में 'धर्मज्ञ' थे, धर्मत्व के ज्ञाता थे। भारतीय युवकों को भी धर्म से बिदकना न चाहिये। कठिन परिस्थितियों में धर्म ही धैर्य बंधाता है।

यह वसुन्धरा सत्य के सहारे खड़ी है। इसका स्रष्टा ही स्वयं सत्य स्वरूप है। महात्मा गाँधी को भी महात्मा और विश्ववन्द्य इसी सत्य निष्ठा ने बनाया। राम भी ऐसे ही 'सत्य-सन्ध' थे। उन्होंने भुजा उठाकर दानवों का, आततायियों का, मूलोच्छेदन करने का सत्य-संकल्प किया और उसे पूरा करके भी दिखाया। शिष्टों के वे सदा सेवक रहे, और प्राण पण से उनका संरक्षण भी किया। आपको भी सत्य-संध, सत्य-निष्ठ और सत्य-संकल्प रामवत् ही होना चाहिये।

वे 'प्रजानाञ्च हितेरतः' भी थे। उन्होंने अपनी प्रिय प्रजा का कभी अहित चिन्तन नहीं किया। वे बीसोंविश्व डिमोक्रेट थे, पूर्णतया प्रजातंत्रवादी थे। कलियुगी-सम्राट् अष्टम एडवर्ड ने काम वासनाभिभूत हो प्रेयसी के इकशारो से उपविद्ध होकर राज्य-पालन धर्म का परित्याग किया, उधर त्रेतायुगी सम्राट राम ने जनापवाद के शमनार्थ प्राणेश्वरी जनक नन्दिनी तक से मुख मोड़ लिया। इसीलिये प्रजा-पालक राम के 'राम-राज्य' की आज भी सराहना की जाती है। आपको भी जन-मन-रंजन का व्रत उन्हीं के समान लेना है।

वे यशस्वी थे, ज्ञान सम्पन्न थे। 'शुचि' अर्थात् पवित्रात्मा थे। 'वश्य' थे। उन्हें अपने ऊपर पूर्ण नियन्त्रण था। वासनाएँ उन्हें छू तक नहीं पाई। कल प्रातः राज्याभिषेक होगा इससे

उन्हें कोई असाधारण हर्ष नहीं हुआ और एक क्षण में राज्याभिषेक के स्थान में १४ वर्ष का वनवास होगा, यह जानकर उन्हें न किंचित शोक हुआ। प्रत्येक दशा में सन्तुष्ट रहे। वे 'समाधिमान्' थे। शान्त चित्त से विचार पूर्वक कार्य करने वाले थे। शास्त्र-तत्व् के ज्ञाता थे। स्मृति उनकी बड़ी तीव्र थी। प्रतिभा-सम्पन्न थे; सर्व-प्रिय थे; साधना वाले थे। दीनता-दानवी कभी उनके पास फटकी नहीं; बड़े विलक्षण थे; दूरदर्शी थे और जिस प्रकार नदियों की अन्तिम गति समुद्र है, उसी प्रकार सज्जन पुरुषों से वे सदैव समावृत रहते थे। सबसे बड़ी बात यह थी कि वे सच्चे 'आर्य' थे। सबके साथ समता का भाव रखते थे। निषाद्, शवरी और अहिल्या के साथ जो व्यवहार उनका रहा यह उनके समत्व भाव का ज्वलन्त उदाहरण है। यदि हम हिन्दुओं ने भगवान राम का यही एक गुण ग्रहण कर लिया होता तो आज न अछूतों का प्रश्न उठता, और न मुट्ठी भर मुसलमानों की संख्या करोड़ो तक पहुँचती। हम उनके सदृश 'प्रियदर्शन' बन जाते। न द्वैधीभाव होता और न अपने ही देशबन्धु अपने जानी-दुश्मन बनते। अब तो उनके केवल लोक-रक्षक-रूप का ही अहर्निश अनुचिंतन और अनुकरण करने में ही कल्याण होगा। अन्य गति है ही नहीं। और यह कार्य करना है उन युवकों को जो आज भारतीय विद्यालयों में अध्ययन कर रहे हैं। भारतीय शासन की बागडोर कल उन्हीं के हाथों में होगी। विजया दशमी की छुट्टियों में उन्हें रामलीला देखने का शुभ अवसर प्रतिवर्ष मिलता है। उन्हें चाहिये कि मर्यादा-पुरुषोत्तम राम के उदात्त गुणों पर गम्भीर दृष्टि से मनन करें और अपने जीवन को तद्वत् ढालने का भागीरथ प्रयत्न करें।

—:०:—

४—राष्ट्र-निर्माण और विद्यार्थी

आज से ठीक पैंतीस वर्ष पूर्व की बात है गवर्नमेन्ट ट्रेनिंग कालिज लखनऊ में पढ़ता था। दिन-रात शिक्षण कला की चर्चा सुनता और उसी के स्वप्न देखता था। मनो-विज्ञान का मनन होता था। बाल-क्रीड़ाओं का बड़े ध्यान से निरीक्षण भी करता था। श्रवण, मनन और निदिध्यासन की मशीन-सा बन गया था। इसी बीच एक दिन 'लखनऊ पेपर मिल' देखने सहपाठियों के साथ जाने का अवसर हुआ। न जाने अन्य मित्रों पर क्या बीती, मेरे अन्वेषी-हृदय पर तो उस दिन के दृष्य की सदा के लिये अमिट मुहर-छाप लगी। भुलाई भूली नहीं जा सकती।

सड़े-गले-गन्दे चिथड़ों के ढेर के समीप सर्व प्रथम हमें ले जाया गया। मारे दुर्गन्ध के साँस लेना कठिन पड़ रहा था। ये वे चिथड़े थे जो प्रान्त के ग्रामों, कस्बों और बड़े-बड़े नगरों की गन्दी गलियों से चुन-चुन कर एकत्रित किये गये और सीधे पेपर मिल भेजे गये थे। वह हौज भी देखा जहाँ कुछ मसाला मिला कर वह चिथड़ों का समूह गलाया जाता है। शनैः शनैः लुगदी बनती, और लेही जैसा पदार्थ बन आता है। तदन्तर इस आर्द्र और विनम्र पदार्थ को कई एक रोलर्स (बेलनों) के बीच से दब-दब कर निकलना पड़ता है। अंत में दुग्ध-जैसी श्वेत और चन्दनवत् चमकीली कागज़ की शीटें स्वतः क्रमानुसार संचित होती रहती हैं। सारा क्रम आदि से अन्त तक ध्यान-पूर्वक देखा, और शिक्षण-कला का रहस्य गाँठ बाँध कर लौटा।

नव-जात शिशु सजीव माँस-पिंड ही समझो। चिथड़ों की लुगदी, और माँस की इस लुगदी में बहुत कुछ साम्य है। कागज की श्वेत शीट की भाँति इस माँस के लोथड़े को शुद्ध-बुद्ध और

समस्त दुर्गुण-दुर्व्यसनों से मुक्त आदर्श नागरिक में परिवर्तित करना है। इसे मातृमान्, पितृमान् और आचार्यवान-प्रणाली के तीन बेलनों में से भिन्न-भिन्न कर निष्क्रमण करना होगा। तीनों के तीनों प्रयाग आवश्यक हैं, अनिवार्य हैं। एक की भी न्यूनता अन्त तक पेलती है, कसकती रहती है। जो दुर्गुण माता का, जो दुर्व्यसन पिता का, बच्चा बचपन में सीखता है वह पत्थर की लकीर बन जाता है और बड़ी कठिनाई से मिट पाता है। उत्कट प्रयत्न करना पड़ता है। सत्य संकल्प-शील कोई बिरले व्यक्ति ही विजयी हो पाते हैं। अतः राष्ट्र-निर्माण की सुदृढ़ नींव जमाने के लिये माता-पिता और अध्यापक तीनों को सचेत होने की आवश्यकता है। हमारे दुर्गुण और दुर्व्यसन यदि हम तक ही सीमित रहें तो अधिक हानि न थी। हमारे बेटे-नाती पर-पोतों और आगे तक भी वह ताँता बँधना ही चलता है, महान् हानि तो इस में है। पशु-वर्ग अपना स्वभाव स्वयं नहीं बदल सकता। प्रिय भोजनों का प्रलोभन, और प्रचंड कोड़े का भय उन्हे भी बहुत कुछ परिवर्तित कर देता है। किन्तु मनुष्य को तो परमेश्वर ने मनीषी बनाया है, मनन-शील बनाया है। यदि वह अपने लिये न सही, अपनी भावी संतति के कल्याण की दृष्टि से ही अपनी बीड़ी-सिगरेट, भाँग-तमाखू, चाय-कौफ़ी तथा मद्यपान, सिनेमा-सैर, असत्य वचन, गाली-गलौच, मुकद्दमे बाज़ी, चोर बज़ारी और घूँसखोरी आदि अनेकों दासता के जमाने में सीखे दुर्गुण और दुर्व्यसनों को समूल नष्ट कर देने का सत्य-संकल्प कर लें तो दस वर्ष के अन्दर भारत-वर्ष की काया ही पलट जाय।

किन्तु यह भी सत्य है—बूढ़े तोते मुश्किल से गंगाराम कहना सीखते हैं। आज के विद्यार्थियों की दशा दूसरी है। उनके कुसंस्कार अभी ऐसे दृढ़ और अमिट नहीं बने। उनमे अभी तक

बहुत कुछ लचक शेष है। यदि वे भागीरथ प्रयत्न करें तो भारतीय-राष्ट्र शीघ्र ही आदर्श-राष्ट्र बन सकता है। श्रद्धेय पं० नेहरू अजर और अमर नहीं। प्रधान अमात्य का गौरव-पूर्ण पद एक दिन उस योग्यतम विद्यार्थी को सुशोभित करना पड़ेगा जो आज भारतीय यूनियन की किसी कालिज या गुरुकुल में अध्ययन कर रहा होगा। लौह-पुरुष पटेल की सुदृढ़ भुजायें और दुरदर्शी मस्तिष्क बहुत अधिक समय तक इसी ख़ूबी के साथ काम नहीं दे सकेंगे। राजेन्द्र बाबू, टंडन जी, और इसी प्रकार उन जैसे अनेकों महा पुरुषों ने, जो इस भारतीय-राष्ट्र-नवका का बड़ी कुशलता-पूर्वक संचलन कर रहे हैं, कोई संजीवनी बूटी नहीं खा रक्खी। आज या कल यह सारे का सारा गुरु-तर कार्य-भार युवा-विद्यार्थियों के कन्धों पर ही पड़ने वाला है। अतः उन्हें अब अपनी पुरानी प्रगाढ़-निद्रा से सचेत हो जाना है। नहीं तो बेड़े का सुरक्षित रखना अत्यन्त कठिन हो जायगा। समय बड़ा विकराल आने वाला है। इसकी रोक-थाम करना भारतीय-संस्कृति और सभ्यता के बल-बूते की ही बात होगी। महात्मा जी द्वारा प्रज्वलित-प्रदीप अब अपने पूर्ण प्रकाश के साथ विश्व में देदीप्यमान होना चाहिये। जगन्नियन्ता जगदीश्वर आपको ऐसी ही सुबुद्धि प्रदान करें।

—:०:—

५—राष्ट्र निर्माण और कल का प्रजापति

अब से लगभग तीस बत्तीस वर्ष पूर्व की बात है। स्वर्गीय पंजाब केशरी ला० लाजपतराय अमरीका में थे। उग्र राज-नीतिज्ञों में उनकी गणना थी। एक प्रकार से देश निकाला उन्हें

ब्रिटिश गवर्नमेंट से मिला हुआ था। भारत लौटने की उन्हें आज्ञा न थी। प्रथम विश्व युद्ध में भारत ने मित्र राष्ट्रों की बड़ी सहायता की थी—धन द्वारा, और जन द्वारा भी। आमने सामने के युद्ध में जर्मनो की विजय-वाहिनी सेनाओं से मुठभेड़ भारतीय-वीर योद्धा ही कर सके थे। बड़ा विकराल और भयङ्कर था वह विश्व युद्ध! यदि भारत की सामयिक सहायता न मिली होती, तो ब्रिटेन जर्मनी का क्रीत-दास-वत् होता। दूसरे विश्व युद्ध की नौबत ही न आती, और आज संसार का मान चित्र ही दूसरा हुआ होता।

किन्तु जगन्नियन्ता के नियम विचित्र हैं। मित्र-राष्ट्रों की विस्मय जनक विजय हुई। भारत को उत्तरदायित्व-पूर्ण शासन-प्रदान का आश्वासन मिला। लाला जी को भी स्वदेश लौटने का सुअवसर प्राप्त हुआ। वर्षों के निर्वासन के उपरान्त जननी जन्म-भूमि की पुण्य-स्थली पर पग रखने के पश्चात् सर्व प्रथम भाषण उनका बम्बई में ही हुआ। वह वीर गर्जना आज भी उसी भाँति मेरे कानों मे गूँज रही है। उन्होंने अमरीका निवास के अपने अनुभव भी वर्णन किये, और भारतीय जनता की दुर्दशा का दयनीय चित्र खीच, श्रोताओं के हृदय हिला डाले। उन्होंने कहा "कितना महान अन्तर है अमरीका के स्वतंत्र जीवन-प्रद, उच्चाकाँक्षापूर्ण वायु मण्डल में. और भारत के निराशा जनक, औदास्यपूर्ण और उमङ्ग शून्य तत्कालीन दासत्व की भावनाओ मे!" उस देश का मोची (जूते गाँठने वाला, बनाने वाला नही) का मन चला पुत्र भी अमरीका का एक दिन राष्ट्र पति बनने का स्वप्न देखता है। किन्तु अभागे तत्कालीन भारत के उच्च से उच्च कुलोत्पन्न युवक की दृष्टि केवल दरोग़ा, तहसीलदार और डैप्युटी कलक्टर तक ही सीमित थी।

धन्य है प्रभु की लीला! उसे पर्वत से राई, और राई से

पर्वत करते विलम्ब नहीं लगता। वह बड़ा कृपालु और न्याय-शील है। उसने हमारी अकर्मण्यता, स्वार्थ परता, पारस्परिक द्वेष-भाव और देशद्रोहादि अनन्त दुर्भावनाओं के कारण ही शताब्दियों की परतन्त्रता हमें प्रदान की थी। किन्तु जब उसने ठोक पीट कर जाँच कर ली कि इस पुण्य देश में पुनः दयानन्द, तिलक, गोखले, रानाडे, राम मोहन लाजपत और गांधी जैसे त्यागी, तपस्वी, धर्मनिष्ठ, कर्मनिष्ठ और सत्यनिष्ठ अनेकों पुण्य आत्माएँ चिर दासत्व की निविड़ शृङ्खलाओं से बेचैन हो, उनसे विमुक्ति पाने के लिये राष्ट्र-यज्ञ में जीवन की आहुतियाँ समर्पण कर रही हैं, तो उनका सिंहासन हिला, और उसने ब्रिटेन के फौलादी शिकंजे से हमें रिहाई बख्शी। लाठी चार्ज सहने, जेलों में सड़ने और फाँसी के तख्तों पर लटकने का मधुर फल भी हमें प्रदान किया।

किन्तु क्या हम इस अमृत फल को चिरकाल तक सुरक्षित रख सकने का आचरण कर रहे हैं ? चहुँ ओर दृष्टि प्रसार कर देखिये, अन्धा धुन्धी का साम्राज्य दिखाई देता है। जान पड़ता है 'प्रजा-ऊँट की नकेल नाक से निकल गयी है। स्वतंत्रता के स्थान में स्वच्छन्दता राज्य करती दृष्टिगत हो रही है। राष्ट्र-पोत के कुशल कर्णधारों ने बेशक इस नाजुक राष्ट्र-यान को विकट चट्टानों से बचाकर खेया है। कई कार्य ऐसे आश्चर्य जनक सम्पादित हुए हैं जिनका जोड़ विश्व के इतिहास में खोजे नहीं मिलता। जवाहर के जौहर की धाक विश्व के राजनीतिक जौहरी मान गये हैं। पटेल का सिक्का, यदि चन्द्रगुप्त सम्राट् का गुरु चाणक्य आज जीवित होता, तो बड़े विनम्र भाव से स्वीकार कर लेता। राजा जी की गवर्नर जनरली के सुसमाचार पाकर भारत के जीवित पूर्व वाइसराय-गण मन ही मन उनका

लोहा मानते होंगे। इटली, फ्राँस, जर्मनी, आस्ट्रिया, नार्वे, स्वीडन और स्विट्जरलैन्ड जैसे विस्तार वाले अनेकों भारतीय रियासतों के अधिपति आज बिना कान खुरखुराये अधिकार विहीन हो गये, और रुधिर की एक बूँद तक न बहने पायी। कैसी शान्त राज-क्रान्ति! कैसा सुन्दर राज विप्लव हुआ है यह!! है कहीं दुनियाँ के पर्दे पर दीगर ऐसी बे-मिसाल, कोई मिसाल?

लेकिन इस सचाई से भी आँख ओझल नहीं की जा सकती कि उनके मातहत अपना कार्य ठीक-ठीक सञ्चालन नहीं कर रहे। ऐसा जान पड़ता है आँधी के आम बटोरे जा रहे हैं। क्या खूब मौका मिला है! बस, बटोरो जिससे जितना बन पड़े। देश का नया विधान बन रहा है। नये चुनाव होंगे ही। कौन जाने सत्ता फिर हाथों रहो न रहो? कम से कम तीन पुश्तें तो आनन्द से बैठो खा सकें। अरे गुमराह भाइयो! क्या इसी अन्धाधुन्धी के लिये इतनी मुसीबतों का सामना किया था? कुर्बानियाँ की थीं? राष्ट्र छप्पर को सकुशल उठाने में। यदि सहायक नहीं हो सकते, तो कम से कम उसे पकड़ कर लटको तो मत!

जान पड़ता है दासता के पूर्व संस्कार अभी इनका पिण्ड छोड़ना नहीं चाहते। मर्ज़ ला-इलाज हो गया है। इन अभागे चिर रोगियों से वियोग की कुछ दिन और सन्तोष की प्रतीक्षा करनी पड़ती दिखाई देती है। किन्तु इस बीच में राष्ट्र के भावी कर्णधार विद्यार्थियों को अभी से सचेत हो जाना चाहिये। राष्ट्र की उच्च से उच्च पद उनकी प्रतीक्षा में हैं। वे भावी भारत को जिस उच्च शिखर पर पहुँचाना चाहते हों, उसके लिये आज से ही उत्कृष्ट प्रयत्न करना प्रारम्भ कर दें। सर्व प्रथम शरीर का आरोग्यता पर समुचित ध्यान देना परमावश्यक है।

"शरीरमाद्यं खलु धर्म साधनम्"

जिसका शरीर-टट्टुआ ही जवाब दे गया, वह क्या धर्म-धन-ढो सकेगा ? राष्ट्र सेवा के लिये शरीर का हृष्ट-पुष्ट और नीरोग होना पहली शर्त है। और इस शर्त को पूरा कर सकने के लिये ब्रह्मचारी और संयमी रहना ठहरा अनिवार्य ! संयमी जीवन भी वही युवक और युवती बिता सकेंगे जो सिनेमा आदि भोग-विलास के कु-संस्कारों से उसी प्रकार पृथक रहेंगे जैसे काले विषधर नाग से।

शरीर के पश्चात् मस्तिष्क की बारी आती है। स्वस्थ मस्तिष्क के लिये भी स्वस्थ शरीर की आवश्यकता है। सुन्दर सुन्दर स्वस्थ विचारों का भी मस्तिष्क पर अच्छा प्रभाव पड़ता है। इसके लिये सत्सङ्गति की आवश्यकता है। सत्सङ्गति पुरुषों और पुस्तकों दोनों ही की सम्भव है सत्पुरुषों का भारत में अभी अभाव है। सद्ग्रन्थमाला का इतना अभाव नहीं। प्राचीन और अर्वाचीन साहित्य इससे परिपूर्ण है। "जिन खोजा तिन पाइयाँ"। बस इस बात को याद रखिये। इसके साथ मन-माना विद्याध्ययन कीजिये। पंडित नेहरू का स्थान, सरदार पटैल का स्थान, गवर्नर जनरल राजा जी का स्थान, पन्त जी का स्थान साधारण योग्यता के व्यक्ति प्राप्त नहीं कर सकते। किन्तु वे अब इंगलैण्ड से निमन्त्रित नहीं किये जायेंगे। उनकी पूर्ति भारत माँ के नवीन नौ-निहाल ही करेंगे जो आज भारतीय विद्यालयों में दीक्षित हो रहे हैं।

शरीर और मस्तिष्क से भी कहीं अधिक आत्मा के सुसंस्कृत होने की आवश्यकता है बिना आत्मबल के कोरा शरीर बल और मस्तिष्क-बल निकम्मा और निरर्थक है। महात्मा गांधी आत्मबल के द्वारा ही ब्रिटिश फौलादी शिकंजे

को छिन्न-भिन्न करने में समर्थ हुए। इसे आज विश्व भली-भाँति जानता है। आत्मिक बल के लिये चरित्र-शुद्धि और ईश-विश्वास की आवश्यकता है। अतः विद्यार्थियों का परम कर्तव्य है कि वे अभी से अपनी शारीरिक, मानसिक, आत्मिक बल-वृद्धि का समुचित ध्यान रक्खें। जिससे जब उनको अपने प्रिय राष्ट्र की सेवा का सुअवसर प्राप्त हो, तो परीक्षा में खरे उतरें।

—:०:—

६-राष्ट्र-निर्माण और शिक्षा-विभाग

राष्ट्र-रक्षा के उपरान्त राष्ट्र-निर्माण कार्य ही ध्यान देने योग्य रहता है। कभी कभी तो वाह्य-शत्रुओं की अपेक्षा आन्तरिक शत्रु अधिक घातक सिद्ध होते हैं। अंगरेजों ने अपनी वीरता से भारत पर विजय प्राप्त नहीं की, हमारी आन्तरिक दुर्बलताओं से लाभ उठाकर हमारी ही वीरता को खरीदा गया और हम दास बने। हमारी फूट ने शत्रु को पुष्ट किया। दासता की चक्की में पिस-पिस कर फिर अक्ल आयी। परमेश्वर की महान अनुकम्पा से देश में महान आत्माओं का प्रादुर्भाव हुआ। महर्षि दयानन्द उनमें अग्र-गण्य ठहरते हैं। उन्होंने ही सर्वप्रथम सिंहनाद किया कि "अच्छे से अच्छे विदेशी-राज से बुरे-से-बुरा स्व-राज अच्छा है।" स्वदेशी का प्रचार सर्व प्रथम उन्होंने ही किया। स्वयं गुजराती और संस्कृत के प्रकाण्ड पंडित होते हुए, भी, हिन्दी को राष्ट्र-भाषा बनने के उपयुक्त समझा और वेद-भाष्य एवं अनेकों पुस्तकें और पत्र-पत्रिकाएं हिन्दी में प्रकाशित कीं, और कराईं। शुद्धि और अछूतोद्धार को आवश्यक ठहराया। विधवाओं के करुण-क्रन्दन पर आँसू बहाये, पुनर्विवाह प्रचलित

कराया। अल्पायु के विवाहों की निन्दा की। भारतीय आर्य-संस्कृति को सर्वोत्तम ठहराया, और भारतवर्ष को जगद्गुरु सिद्ध किया। समस्त कुरीतियों पर कुठाराघात किया गया। रजवाड़ों में जाकर राजाओं के भोग-विलासों की घोर निन्दा की। उन्हें प्राचीन राज-धर्म की दीक्षा देने के लिये राजस्थान के मध्य में अजमेर में अपना केन्द्र स्थापित किया, और वहीं अपना अड्डा जमाया।

ब्रह्म समाज, प्रार्थना समाज, सर्वेन्ट्स आफ इन्डिया सुसाइटी आदि में भी अनेकों देश-सेवा और सुधार-कार्य किये। काँग्रेस ने राजनीतिक सुधार कराने के लिये ही जन्म लिया। आगे चलकर उसमें 'गर्म' और 'नर्म' नाम से दो दल विभाजित हुए स्वर्गीय गोखले और लोकमान्य तिलक ने, अपने अपने ढँग से देश की तन-मन से सेवा की। 'बाल', 'पाल' और 'लाज' त्रि-मूर्ति की खूब तूती बोली। अंत में महात्मा गाँधी कार्य-क्षेत्र में अवतरित हुए। सत्य और अहिंसा-मयी गाँधी की आँधी ऐसी विलक्षण और तीव्रगति से चली, कि विश्व-विख्यात ब्रिटिश-राजनीतिज्ञों के छक्के छूट गये। जवाहर और पटेल लक्ष्मण और बजरङ्गवीर की भाँति नायक भी महात्माजी को उपयुक्त ही मिले। काँग्रेसी असंख्य जन-समुदय को बानरी-सेना समझो। विजय होनी अनिवार्य थी। विजय के उपरान्त भगवान राम का जीवन सुखी जीवन नहीं व्यतीत हुआ। महात्मा गाँधी भी अंत में १२५ वर्ष जीने के उत्सुक नहीं रहे। सीता-रूपिणी भारतमाता को भी अपार संकट झेलने पड़े। अंत भगवान राम का भी शोकमय ही हुआ, और महात्मा गाँधी का भी। किन्तु राज्य भगवान ने ऐसी सुन्दरता और दक्षता पूर्वक किया कि लाखों वर्ष बीतने पर भी आज राम-राज्य की सराहना की जाती है। महात्मा गांधी भी राम-राज्य का ही स्वप्न देखा करते थे। उन्होंने राम-

राज्य की रूप-रेखा भी अपनी भाषणों द्वारा स्पष्टतया खींच दी है। उस स्वप्न को अभी तक सत्य सिद्ध करना शेष है।

किन्तु वानरी सेना सत्ता-रूढ़ होने पर जैसा कि स्वाभाविक ही है कुछ प्रमाद के वशीभूत सी जान पड़ती है। कुशल-नायक राष्ट्र-नवका को बड़े उत्साह और लगन के साथ चट्टानों से बचा-बचा कर खे रहे हैं। किन्तु साथी और विशेषतया वे, जिन्होंने लाठी चार्ज बेशक सहे, जेल यातनाएँ भी काफ़ी भोगीं, किन्तु शासन की ए० बी० सी० डी० भी नहीं सीखीं, गज़ब की भूलें कर रहे हैं। कुछ को सत्ता का नशा सता रहा है। ऐरे ग़ैरे नत्थू खैरे की क्या चलाई, शासकों पर भी जनाब धाक जमाते हैं। भोली प्रजा को ठग-ठग कर अपनी और अफसरों की जेब भरने की किम्वदन्तियाँ भी हवा में उड़ती सुनाई दे रही हैं। प्रजा के भोजन और वस्त्रों का प्रबन्ध अभी बिल्कुल ढंग पर नहीं आया। अन्य वस्तुओं के भाव भी आसमान पर पहुँचते चले जा रहे हैं। रुपये का मूल्य दो-ढाई आना मात्र रह गया है। व्यापारियों ने ख़ूब ब्लैक किया है। मज़दूर और किसान, जिनकी आड़ में यार लोग अपना उल्लू सीधा करना चाहते हैं. आज पहले से कहीं अच्छे हैं। सबसे करुणा जनक-दशा मध्यमवर्ग वालों की है। उनमें भी वे, जो वेतन भोगी हैं, और जहाँ रिश्वत का बाज़ार गर्म होने की गुंजाइश नहीं।

सबसे निकृष्ट दशा है अध्यापक वर्ग की, और उनमें भी वे, जो डिस्ट्रिक्ट-बोर्ड और चुंगी के मदर्सों में अध्यापकी करते हैं। मुश्किल से तीस पैंतिस रुपये हो पाये हैं। बेचारे कैसे उदर पूर्ति करें? हारी-बीमारी, छोछिक. भात, ब्याह शादी. बच्चों की तालीम कितनी समस्याओं का सामना करना है! घी, दूध के दर्शन नहीं होते। सूखी रोटी तक कुनवे को भर-पेट नहीं मिल पातीं और उनसे आशा की जाती है कि बच्चों को आदर्शनागरिक

बनाएँ। ग्रामों में बड़ी विषैली हवा चल रही है। राष्ट्र के शत्रुओं को कांग्रेस की भूलों से अपना स्वार्थ-साधन करने का सुनहरी मौक़ा मिल रहा है। उनके जाने राष्ट्र जहन्नुम में भले ही चला जाय! अबकी वोटों में भोले-भाले लोगों पर जादू डाल कांग्रेस को पछाड़ने की ठान रक्खी है। भूखा भिड़याई करता ही है। गाँव के लोगों को सीधे मार्ग पर बनाए रखने का एक मात्र साधन मुदर्रिस ही था। यदि वह भी हाथ से चला गया, तो नित नये उपद्रव होते दिखाई देंगे। शिक्षा-विभाग को चाहिये कि बड़ी-बड़ी तनख्वाओं में 'कट' (कमी) करके, अथवा अन्य साधन जुटा कर गाँव और चुंगी के अध्यापकों की काफ़ी वेतन-वृद्धि की जाय। आज की विकट परिस्थिति में एक शत मुद्रा मासिक से कम में गुज़र होनी एक साधारण कुटुम्ब की असम्भव है। रोटी और वस्त्रादि आवश्यक वस्तुओं की ओर से बेफ़िक्री होने पर राष्ट्र-निर्माण की बातें सूझेंगी। आज तो बिचारा चुंगी का ग्रामीण अध्यापक जला-भुना बैठा है और कांग्रेस-राज को खुल्लम खुल्ला नहीं, तो मन-ही-मन, अवश्य कोसता है। केन्द्रीय शिक्षा-विभाग को अवश्य सचेत होकर शीघ्रातिशीघ्र आगे क़दम उठाना चाहिये। अभी कुछ नहीं बिगड़ा। चिड़ियों द्वारा खेत चुगे जाने पर फिर हा-हा करना बेसूद होगा। और दीगर स्कीमें फिर बनती रह सकती हैं, पेट की स्कीम का नम्बर सबसे अव्वल आना चाहिये। नहीं तो सारी स्कीमें फ़ेल होंगी और लाज़िमी तौर से फ़ेल होंगी।

—:०:—

७—राष्ट्र-निर्माण और पुलिस

मेरा गाँव युक्त प्रान्त के पश्चिमी किनारे पर है। अलीगढ़, मथुरा और बुलन्द शहर तीनों ज़िलों की सीमाएँ पाँच-पाँच

छै-छै कोस चलकर पकड़ी जा सकती हैं। जाब प्रान्त तो इतना समीप है कि दिन में पचास बार वहाँ हो आएँ और अपने प्रान्त में लौट आवें। केवल एक 'जमुना' ही तो पार करनी पड़ती है। वह भी गर्मियों में नाला-जैसी रह जाती है। घुटनों-घुटनों पानी रह जाता है। तीन-चार छलाँगों में पार, और तीन-चार छलाँगों में बार। बस पंजाब-प्रान्त का आना-जाना एक बार का समाप्त।

जमुना से जहाँ अन्य लाभ हैं, वहाँ समाज के एक वर्ग के लिये तो उसे काम-धेनु ही समझना चाहिये। बढ़िया से बढ़िया भैंस, बैल और घोड़ियाँ एक रात में मन-मानी संख्या में इधर से उधर परिवर्तित की जा सकती हैं, और कर दी जाती हैं। रातों-रात गोष्ठियाँ लगती हैं, 'मसौते' बँधते हैं, गुप्त ऐक्सचेञ्ज के सौदे पटते हैं, फिरौतियाँ होती हैं—सब कुछ होता है। तो क्या पुलिस को इसका ज्ञान नहीं? है! और काफ़ी है!! प्रत्येक ग्राम की खुफ़िया लिस्ट थानेदार के पास रहती है। फिर पकड़-पकड़ कर बे-किराये के मकान की हवा क्यों नहीं खिलाता? हाँ खिलाता भी है। किनको? नौ-सिखियों को जिनकी समाज में कुछ धाक नहीं, और जिनसे अच्छी तरह मुट्ठी गरम होने की आशा नहीं होती। पक्के और पुश्तैनो तो उसके लिये नन्दन-वन के कल्प-वृक्ष हैं। एक-एक से भारी चाथ बँधी होती है। जितनी ही मोटी आसामी, उतनी ही मोटी 'पोते' की रक़म। शहरों में जैसे ज्वारियों से, इक्के वालों से, मोटर-मालिकों से, चौथ-बँधी होती है, ठीक उसी तरह मवेशी-चोर पुलिसवालों की दिवाली मनवाते रहते हैं। बस, जो एक बार टप्पल के थाने का अधिनायक (दारोगा) रह आया, वह कम से कम दो-तीन पुश्त के लिये तो निश्चिन्त हो ही गया।

लोग कहेंगे—'महाशय जी? क्यों अनर्गल हाँकते हो?

अब तो भारत स्वतंत्र हो गया है! अब किसकी हिम्मत जो खुले खजाने इस प्रकार की मन-मानी-घर-जानी कर सके? किसकी हिम्मत?" अरे साहब, किसकी हिम्मत कहते हो? जिसको परमेश्वर ने देखने को नेत्र, और अनुभव करने को हृदय दिया है, वह उस इलाके में जाय, और लोगों के हाथ पर गंगाजली रखकर पूछे, तो पता चलेगा कि जिस प्रकार चीज़ों की क़ीमतें पंचगुनी छ-गुनी हो गई हैं, और लोग खुशी से खरीदते हैं उसी प्रकार पुलिस की रिश्वतों का निर्ख़ भी दस गुना चढ़ गया है। जहाँ पचास से काम चलता था वहाँ पाँच-सौ, और जहाँ एक शत से यमराज के दूत प्रसन्न हो जाते थे वहाँ एक सहस्र भी अपर्याप्त समझे जाते हैं। ऊँट की नकेल इतनी ढीली कर दी गयी हैं। और कर देने वाले इंगलैण्ड से नहीं आये। हमारे ही भाई हैं। इतनी गर्दी-मर्दी ब्रिटिश शासन में कभी नहीं देखी गयी। जो धींग हैं उनकी तरफ आँख तक नहीं उठाई जाती, बल्कि उनकी आड़ों शिकार खेलने का मन-माना मौका मिलता है। 'रस्सा-कशी' के स्थान में हिस्सा कशी भी प्रायः होती ही रहती है। यह एक नमूना मात्र पेश किया गया है। अन्य स्थानों की दशा भी कमोवेश ऐसी ही मिलेगी।

किन्तु ऐ पुलिस के बन्धुओं! और ऐ रिश्वत खोरों के एजेंटों!! ज़रा परमेश्वर से दहशत खाओ। कुछ देश का भी ख़याल करो। कितने दिन जिओगे? कृपालु परमेश्वर ने दिवङ्गत महात्मा के त्याग, तपस्या आत्मोत्सर्ग और सहस्रों त्यागी तपस्वी सच्चे कांग्रेसियों के बलिदानों के कारण, जो आज चुपचाप एकान्त में बैठे अपने रंगे भ्राताओं की रंगरेलियों पर आँसू बहा रहे हैं, प्रसन्न होकर यह अमूल्य स्वाधीनता प्रदान की है। उसे अपनी कुत्सित क्रिया-कलापों द्वारा कलङ्कित न करो।

पुलिस का महकमा चौकीदारी का महकमा है। रक्षक के स्थान में भक्षक न बनो। गुलामी के जमाने में अङ्गरेज अफसर तुम्हें फटकारते थे, दुदकारते थे, और तुम भी उनसे भयभीत हो. उनके अप्रसन्न होने पर कान दबाते. और प्रसन्न होने पर दुम हिलाने आदि के सभी नाटक खेलते थे, और एवज में वही स्वाँग हिन्दोस्तानी भाइयों से अपने लिये चाहते थे। किन्तु सौभाग्य से अब उन गौराङ्ग महा प्रभुओं का भारत से कृष्ण मुख हो गया है, और उनका उच्च से उच्च स्थान तुम्हें प्राप्त होने का अवकाश और सुअवसर प्राप्त हुआ है। अतः पुरानी आदतों से विदाई ले, नवीन स्वभाव बनाने का सत्य सङ्कल्प करो, जो नव स्वतंत्र भारत के अनुरूप हो। एक बात को सदैव ध्यान में रक्खो।— ग्राम के चौकीदार से लेकर गवर्नर जनरल तक सबके सब पबलिक सर्वेंट हैं, जनता के सेवक हैं। हाकिम जैसी कोई वस्तु अब रह ही नहीं गयी। यदि है तो वह जनता ही है। उसी के हुक्म यानी वोटों से गवर्नमेंट बनती है। वह जिस दिन चाहे एक गवर्नमेंट का तख्ता उखाड़ कर दूसरी का जमा देने की क्षमता रखती है।

हाँ, यदि तुम्हारा वेतन कम है, और वर्तमान मँहगाई के दिनों में उससे गुजर होनी कठिन है, तो वैध उपायों द्वारा आन्दोलन तुम भी कर सकते हो। गवर्नमेंट तुम्हारी सबसे पहले सुनेगी। तुम्हारे बिना उसका काम एक क्षण भी नहीं चल सकता। किन्तु हराम से पेट फुलाना एकदम त्याग दो। दुष्टों, गुण्डों, और बदमाशों को बख्श देने की कोई हिमायत नहीं करता। और यदि कोई करता है, तो कर्तव्य-परायणता के नाते, बाप की भी न सुनो। साथ ही साथ शिष्टों का भी ध्यान रक्खो! भले मानसों, निरपराधों और दीन-हीनों को वृथा कभी तङ्ग न करो। जुर्म होने से पहले जुर्म न होने देने

की भरसक कोशिश करो। महात्मा गाँधी के राम-राज्य लाने में तुम्हारा बहुत कुछ भाग होना चाहिये। यह सम्भव नहीं हो सकता कि तुम्हारी शह बिना खुले खज़ाने जूआ हो सके, या दिन दहाड़े चोरियाँ हो सकें।

तुम्हारा खुफ़िया विभाग पहले देश भक्तों की शिकार में रहता था, अब उसे देश द्रोहियों की खबर लेनी चाहिये। देश-द्रोह पापी-पेट की ख़ातिर काफ़ी कर लिया, अब देश-सेवा करने का असली अवसर आया है। बहती गङ्गा में खूब हाथ पखारो। अत्याचार से उन्हें रक्त रञ्जित न करो।

—:०:—

८—राष्ट्र-निर्माण और जेलखाने

साम, दाम, दण्ड और भेद शासन के ये प्रमुख चार साधन न जाने कब से यूँही चले आ रहे हैं। जो शासन इनका सदुपयोग जानता और अमल में लाता है वही चिरस्थायी होता है। भेदनीति-प्रयोग अन्तिम शस्त्र है, और प्रायः शत्रुओं के लिये प्रयुक्त होता है। अपनों के साथ अधिकतर साम का ही प्रयोग हितकर सिद्ध हुआ है, दण्ड की नौबत तब आनी चाहिये जब वह अनिवार्य हो जाय। इसीलिये कहावत प्रसिद्ध है कि चोर को मारने से पहले चोर की माँ का मारना चाहिये। कुशल शासकों का यह प्राथमिक कर्तव्य है कि उन कारणों की खोज करें जो चोरी आदि दुष्कर्मों के प्रेरक हैं। इसके मुख्य दो ही कारण हैं—अज्ञान और अभाव। यूनानी यात्री मैगास्थनीज़ जब भारत की यात्रा करने आया उन दिनों इस पुण्य-देश में गृहों

में ताले नहीं लगते थे। कारण ? कारण स्पष्ट है—देश धन धान्य से सम्पन्न था; किसी को किसी वस्तु की कमी न थी। फिर ऐसा कौन मूर्ख होता जो अँधेरी रात में नींद हराम कर, साँप-बिच्छू और खारखड्डों का भयङ्कर खतरा शिर पर मोल लेता ? घी-दूध की नदियाँ बहती थीं। भारतीय ग्रामों में भ्रमण करते समय मैगास्थनीज को जब-जब पानी पीने की आवश्यकता पड़ी, लोगों ने उसे दूध पिलाया। ग्राम-ग्राम में मन्दिर थे, और था प्रत्येक मन्दिर ग्राम का विद्यालय। रात को धार्मिक कथाऐं होती थीं; लोग पापकर्मों से डरते थे; ईश्वर का भय था। आज तो खुदा को खुन्टी पर टाँग रक्खा है। भारत में कम्यूनिस्टों की माँ भी यही 'अविद्या' और 'अभाव' है। इन दोनों को देश से दूर भगा दीजिये, और कम्यूनिस्टों की इति श्री समझ लीजिये। चोरी, ठगी और जूए का भी निश्चय ही अन्त हो जायगा।

जेलखानों की व्यवस्था स्वराज होने पर भी वही बाबा आदम के जमाने की ज्यों-की-त्यों चली आ रही है। जान पड़ता काँग्रेसी मिनिस्टर अपनी पुरानी जेल-व्यथाओं को शासन की कुर्सी पर विराजमान होते ही भूल गये। भूल क्या गये ? उन्होंने तो 'ए' और 'बी' क्लास की मौजें मारी। जिन्होंने यातनाऐं सही, वे बेचारे आज भी भटकते फिरते से दृष्टि-गत होते हैं। सारा ढाँचा वही। वही आतङ्क, वही तिकड़म और वही रिश्वत; बल्कि 'ग़ुलाम-मास्टर' का भय भाग जाने से उपयुक्त बातो में और भी वृद्धि हो गयी है। जेल के पुराने खबीसो को को आ मूल-चूल पैंशन दे देनी चाहिये। यदि एक भी शेष रह गया तो सारे तालाब को गंदा कर देगा। जेल के नवीन अफ़सरों की नवीन ढङ्ग से ट्रेनिङ्ग होनी आवश्यक है। जेलों का ध्येय दण्ड देना नहीं; सुधार अभिप्रेत है।

—:०:—

९—राष्ट्र निर्माण और कचहरियाँ

विदेशी सरकार और विशेषतया ब्रिटिश सरकार भारत के लिये महान अभिशाप सिद्ध हुई। स्वतन्त्र भारत में न्याय बिकने का उदाहरण किसी समय का नहीं मिलता। किसी ग़रीब बेबस को कोई गुंडा बदमाश सताता है। गाँव में कोई सुनता नहीं। मजबूरी कचहरी में दाद-रसी को पहुँचा। मालूम हुआ अर्ज़ी देनी होगी। एक विशेष प्रकार का कागज़ चाहिये; लिखाई को टके चाहिये; और चाहिये अर्ज़ी पर लगाने को स्टाम्प। या तो यह सब कुछ करो, या फिर हवा खाओ। कुछ संगीन मामला हुआ तो पहले डाक्टरी कराओ, उसकी फीस दो, वकील करो, वक़ालत नामे पर फिर स्टाम्प लगाओ, वकील का महनताना दाखिल करो, मुहर्रिरी पहले अदा करो, दफ्तर खर्च जुदा जमा करो, फिर भी पेशी में रखना अन्दाज़ी। क्योंजी! यह रखना और क्या बला आ निकली? अभी एक रखने से डर गये! ऐसे अनेकों रखनों, रुकावटों, दुश्वारियों, और कठिनाइयों के दलदल पार करने होंगे; न जाने कितना समय लगे, और कितना रुपया स्वाहा हो जाय अन्त में कोर्ट का टका सा जवाब मिले कि फैसला कर लो।

मित्र! यह लम्बी कहानी कुछ समझ में न आयी। न आयी होगी! मालूम होता है कभी कचहरी पिशाचिनी से पाला नहीं पड़ा। कम्बख्त खून चूँस लेती है, और मुदयी मुदायिलै को तबाह करके पिण्ड छोड़ती है। अच्छा तो लो—अर्ज़ी दावा आदि मुरत्तब कराने के बाद अब पेशी का नम्बर आया! पेशकार का नाहक़-हक़ पहले पेश होना चाहिये, नहीं तो पेश होते हुए भी न होने के बराबर। सैकड़ों नुक़्स निकलेंगे। मजाल

है मुक़द्दमा आसानी से पेश हो जाय। यदि पेशी हो जाय तो चपरासी को विशेष इशारा पहले ही से कर दिया गया। मुद्दयी को पता ही न चला कि आवाज़ लगी, या न लगी, और मुक़द्दमा अदम-पैरवी में खारिज। अब फिर उसे नम्बर पर लाओ और दुबारा खर्च करो। दूध का जला छाछ को फूँक कर पीता है। पेशकार साहब की भेंट अब की बार बिना माँगे नज़र करता है। यह पेशी-का-देवता पहली ही भेंट से प्रसन्न नहीं हो जाता, प्रत्येक बार की पेशी पर नवीन भेंट समर्पण करना अनिवार्य है। अतः पहली भेंट तो 'लभाव' की होती है, सन्तुष्टि के लिये तो ऐसी अनेकों भेंटें चढ़नी चाहिये। इसी से तारीखों पर तारीखें पड़ती हैं। वकीलों और मुहर्रिरों के भी खूब घी के दीपक जलते हैं और मुख्यतया कलक्टरी के वकील मुहर्रिरों के। बेचारे फरीकैन गवाह लाते हैं, मोटर किराया देते हैं। मन चाहा मिष्टान्न खिलाते हैं, अन्य प्रकार से उन्हें दान-दक्षिणा दे सन्तुष्ट करते हैं, और पेशी के समय पता चलता है कि अदालत ही नहीं आयी, या आकर जल्दी तशरीफ़ ले गयी। उनकी बला से! किसी के धन का चूर्ण हुआ करे, काम हर्ज हुआ करो! अन्धा-धुन्ध हो रहा है। गांवों में जाओ, और गांव वालों से पूछो वे क्या कहते हैं। बे-नुक्त सुनाते हैं। गालियाँ देते हैं। आशा थी सुराज हो गया है अब पुरानी "अंधेर नगरी और अन-बूझ राजा" वाली कहावत का अन्त हो जायगा। किन्तु जो बातें ब्रिटिश-राज में भी देखने को न आती थीं, वे अब खुले खजाने निर्भय रूप से देखने को मिलती हैं। अब तो शिफ़ारिशें पहुँचती हैं, और अदालत को भी कभी-कभी मज-बूर होना पड़ता है। अब बोलो यह 'स्व-राज' है, या उसकी विडम्बना मात्र?

एक बात लगे हाथ और सुन लीजिये—वे हद स्टाम्प फ़ी और कोर्ट-फ़ी वसूल होती है, किन्तु जिनसे वह वसूल होती है उनकी सहूलियत और आराम कभी कोई प्रबन्ध करने की इन टट्टी और बिजली के पंखोंकी ठंडी हवा खाने वाले 'सो कोल्ड'— हाकिमों को सूझती है ? मई और जून की झुलसती लूओं में सवेशियों की ति इधर उधर भटकते फर्यादियों को कौन नहीं देखता ? लूएँ चलो मूसलाधार वर्षा होती रहो, शरीर छेदने वाली शीत वायु के झोंखे प्रकम्पित हेते रहो, किन्तु अदालती कमरों में सुख-चैन से बैठे हाकिमों को किसी की क्या चिन्ता ? फिर लोग कहते हैं कम्यूनिज्म का भेड़िया मुँह फाड़े भारत में भी बड़ी द्रुतगति से भागा चला आ रहा है। हाँ ! उस से इन्कार वही कर सकता है। जो देखते हुए भी देखना नहीं चाहता। दक्षिण और पूर्व के बाड़ों में उसका प्रवेश काफ़ी हो चुका है। अन्य बाड़ों की भेड़ों को उससे सुरक्षित रखने की अवश्यकता है। भारत की जनता अभी भेड़ ही बनी हुई है। कंट्रोल, मंहगी, घूँसखोरी, अन्याय, अत्याचार, और बेक़दरी भेड़िये से मित्रता करने के लिये प्रोत्साहन देते हैं। अबोध जनता दूरदर्शी नहीं होती। उसकी दशा अबोध बालकवत् होती है। कोई भी ठग ज़रासा प्रलोभन दे उसे फुसला सकता है। सरकारी मशीन को चाहिये कि अपना दक़ियानूसी रवैया बदले और 'सुराज' की फ़िज़ा पैदा करे।

१०—राष्ट्र-निर्माण और रेल-विभाग

रेलें पहले पहल ब्रिटिश सरकार ने भारत में अपना राज्य दृढ़ करने की नीयत से निकलीं थीं। प्रजा-हित की उसमें गन्ध

भी न थी। फ़ौजी यातायात की सुगमता सर्व प्रथम उसका लक्ष्य था। जनता तो उससे भयभीत थी। मुझे एक प्रतिष्ठित वृद्ध पुरुष ने बताया कि उनके माता पिता उन्हें सरकारी मदर्से में पढ़ने इसलिये नहीं भेजते थे कि विदेशी सरकार उन्हें रेल में बिठा कहीं इंगलैण्ड न भेज दें। किन्तु ज़माने को बदलते देर नहीं लगती। आज यह दशा है कि मील दो मील भी पैदल चलना पसन्द नहीं। घंटों स्टेशन पर मवेशियों की तरह लेटे पड़े रहेंगे, लेकिन आठ दस मील की बात अलग रही, चार छै मील भी पैदल चलने की किसी को हिम्मत नहीं होती। अब से तीस चालीस वर्ष पूर्व चालीस-चालीस मील साधारण पुरुष सुबह से शाम तक आसानी से पहुँच जाता था।

धीरे-धीरे देश में रेलों का जाल सा बिछना शुरू हुआ। विदेशी कम्पिनियों ने धन बटोरा। सफ़ेद चमड़े वाले यूरोपियनों के लिये हर प्रकार के सुभीने दिये गये। उनके लिय पृथक वेटिङ्गरूम थे; टिकट खरीदने के स्थान जुदे थे; बाहर निकलने के फाटक सुभीते के थे; डिब्बों में सुन्दर कोमल गद्दियाँ थीं, आईने लगे होते थे। बड़े से बड़े हिन्दोस्तानी को गौराङ्ग महाप्रभुओं के डिब्बे में बैठने का साहस नहीं होता था, और न वे किसी काले चमड़े वाले को आसानी से बैठने ही देते थे। फ़र्स्ट और सैकिंड क्लास एक प्रकार से उनके लिये रिज़र्व से ही थे। धनी-मानी हिन्दोस्तानी इन्टर में ही प्रायः सफ़र करते थे। थर्ड क्लास की दशा शोचनीय थी। महाप्रभुओं की दृष्टि में थर्ड क्लास के यात्री मनुष्य-रूप में पशु ही थे। रेवड़की भाँति बाड़े में ठूँस दिये जाते थे। उनके आराम और सुभीते का कोई ध्यान रखना आवश्यक नहीं समझा जाता था, थर्ड क्लास का वेटिङ्ग रूम मवेशियों के उसारे से बाजी लेता था। एक दो बैंच किसी किसी

बड़े स्टेशन पर डाल दी जाती थी। शेष यात्री चापायों की भाँति पैर पसारे ही यत्र तत्र पड़े दिखायी देते थे। अखबारों में थर्ड क्लास की यातनाओं का कभी-कभी उल्लेख हो जाता था। महात्मा गाँधी ने भी 'यङ्ग-इंडिया' में लेख लिखे थे, किन्तु सुधार न होने के बराबर ही हुआ।

अब चूँकि भारत स्वतन्त्र है, अतः उसी स्थिति को चलते रहने देना लज्जा जनक है। कांग्रेस सरकार ने इस ओर ध्यान दिया है। 'जनता एक्सप्रेस' इसका प्रत्यक्ष प्रमाण है। स्टेशनों पर बैठने का प्रबन्ध भी किया जा रहा है। थर्ड क्लास के वेटिङ्गरूम में कहीं-कहीं बिजली के पंखे भी देखने में आये हैं रेलवे विभाग को सबसे अधिक आमदनी भी थर्डक्लास के यात्रियों से होती है। फिर भी सबसे कम ध्यान आज भी उनके सुभीते के लिये दिया जाता है। रेलवे विभाग को अपने इस रवैये में आमूल-चूल परिवर्तन करने की आवश्यकता है। परिगणित जातियों की भाँति कुछ वर्षों के लिये थर्डक्लास के सुभीता के विशेष आयोजन होने चाहिये। थर्डक्लास के डिब्बे इतने कम होते हैं कि लोगों को पायेदानों पर खड़े-खड़े सफ़र करने के लिये मजबूर होना पड़ता है, जिससे ४० व्यक्तियों की प्रतिदिन मृत्यु होने का अनुमान लगाया गया है। विदेशी सरकार की दृष्टि में भारतीय जन दुपाए-पशु-वत् थे। स्वतंत्र भारत में अब भी हमारा उसी प्रकार का मूल्य आँका जाना लज्जास्पद है, अशोभनीय है। आसानी से टिकट खरीद सकने का भी अभी तक कोई प्रबन्ध नहीं हुआ। वृद्ध-जनों, स्त्रियों और दुर्बल यात्रियों के लिये टिकट खरीद सकना एक लड़ाई जीतना हो जाता है। लिखा रहता है 'यहाँ टिकट चौबीसों घंटे मिलती हैं' किन्तु बटनी प्रारम्भ होती हैं पंद्रह-बीस मिनट पहले। जिन

स्टेशनों पर गाड़ी सिर्फ पाँच मिनट खड़ी होती है वहाँ तो बड़ी मुसीबत का सामना करना हो जाता है, और रेल-बाबूओं को मुट्ठी गर्म करने का अवसर भी खूब मिल जाता है। कदाचित् वे विलम्ब करते भी इसी कारण से हैं।

बड़ी भारी शिकायत जनता को माल गोदाम के बाबूओं की रहती है। मालगोदाम क्या है यार लोगों के लिये दुधारी गाय है, जिसे 'अकोर' डाले बिना न 'पाँसने' का स्वभाव-सा पड़ गया है। माल पड़ा सड़ता रहे, उनकी बला से। कभी कह देंगे—'माल जाना बन्द'। यदि चुपचाप कुछ काना-फूँसी कर ली जाय, तो ट्रैफिक बड़ी आसानी से खुल जाता है।

किन्तु अब ऐसी निन्दनीय बातों का अन्त हो जाना चाहिये और जनता को भी चाहिये कि ऐसे भेड़ियों के मुँह खून लगाने का चस्का न लगने दें। अफ़सरों को रिपोर्ट करें। पापी तो रिश्वत लेने वाला और देने वाला दोनों ही हैं। क़ानून की निगाह मे भी दोनो मुजरिम हैं। सच बात तो यह है कि यदि जनता येन-केन प्रकारेण अपना काम निकालने की कुप्रवृत्ति को दूर कर दे, तो घूँसखोरी स्वतः अपनी मौत मर जाय। उधर रेल के उच्चाधिकारियों का भी कर्तव्य है कि इस ओर कड़ी दृष्टि रक्खें और अपराध पकड़े जाने पर कड़े दण्ड की व्यवस्था करें।

११—राष्ट्र-निर्माण और ग्राम पंचायतें

"जहाँ पञ्च तहाँ परमेश्वर"। यह जनोक्ति हमारी इस पुण्य भूमि भारतमही में न जाने कब से अक्षुण्ण-रूप से प्रवाहित चली आ रही है। कहते हैं कि 'दाई से पेट छिपाना

नहीं जा सकता' ; इसी प्रकार गाँव की बात गाँव वालों से छिपी नहीं रह सकती। प्राचीन काल में दूध का दूध और पानी का पानी वाला न्याय ग्राम-पञ्चायतों द्वारा ही होता रहता था। न चोरों को चोरी करने का साहस होता था, न किसी को किसी का कर्ज मारने की हिम्मत होती थी। व्यभिचार की तो किसी को स्वप्न में भी न सूझती थी। ग्राम के भङ्गी की बहन-बेटी भी अपनी बहन-बेटावत समझी जाती थी, और वही रिश्ता लड़की की ससुराल में मिल जाने पर उसके साथ बर्ता जाता था। चोरी-जारी लड़ाई-झगड़े आदि समस्त बुराइयाँ ब्रिटिश शासन-काल की उपज है।

ग्राम-पञ्चायतें स्वतंत्र गण-राज का जीता जागता नमूना था, जिसका वेदों में भी ज्वलन्त उल्लेख मिलता है। हर बात की सुन्दर, सरल और न्यूनतम व्यय की व्यवस्था थी। ग्राम के बाहर बाग बगीचों मे, अथवा समीप के मैदानों में नवयुवकों के खेलों का प्रबन्ध था। दौड़ें लगती थीं, कबड्डी खेली जाती थी, ठेके कूदे जाते थे ; कुश्तियाँ लड़ी जाती थीं ; मुग्दर हिलाए जाते थे ; भारी नाल उठाए जाते थे ; गेंद-बल्ला भी खेला जाता था। सामयिक त्यौहारों के मेलों में इनका प्रदर्शन भी होता था, और मिलते थे उत्साह वर्धक इनाम। तलवार के काम और गदकाफरी आदि भी इन खेलों में सम्मिलित थे। दूध-घी की कमी न थी। छुट्टी का दूध पीते थे। फल यह होता था कि प्रत्येक नवयुवक उदीयमान सूर्य्य की भाँति जगमगाता नजर आता था। न किसी के चेहरे पर मुर्दनी के चिन्ह थे, न किसी की कमर कमान की तरह झुकी दीख पड़ती थी। छाती चौड़ी और ऊँची उठी हुई, चहरा भरा हुआ, और आँखें चमकीली। जान पड़ता था शेर का बच्चा उछलता, छलाँग भरता चला आ रहा है। पिचके गाल, चुँधी आँखें, सूत से

हाथ पैर और मुहर्रमी शक्ल-सूरत खोजे नहीं मिलती थी। शौकीनी का नामो-निशान न था। स्वभाव में सरलता थी, और थी वृद्धों और गुरुजनों के लिये हृदय में सच्ची आस्था। ग्रामीण नव-युवक विनय-सौम्यता और सुशीलता का प्रतीक था। छल-छिद्र और आधुनिक मक्कारियों की उसे हवा तक न लगने पाती थी। नवविकसित पुष्प-वत् प्रफुल्ल जान पड़ता था। प्रत्येक युवक बृजचन्द्र-कृष्णचन्द्र की स्मृति ताज़ा करता था।

खेलों के अतिरिक्त इस ग्रामीण-स्वर्ग के अन्य कारण भी थे। ग्राम का प्रत्येक मन्दिर पाठशाला था। त्यागो, तपस्वो और प्रजा-हित-चिन्तक गुरु वर्ग अध्यापक होते थे। किसी प्रकार की फ़ीस न थी। फिर भी गुरु जी अपने को मालामाल समझते थे। बस्ती का सारा वैभव उनका था। भोजन और वस्त्रादि की ओर से वे पूर्णतया-निश्चिन्त थे। महीने में दो एकादशी एक अमावस और एक पूर्णिमा, चार दिन पुण्य-तिथियाँ पड़ती थी। प्रत्यक बालक बड़ी श्रद्धा और भक्ति पूर्वक महीने में चार बार 'सीधा' समर्पण करता था। कम से कम आधा सेर तीन पाव शुद्ध छना-छनाया गेहूँ का चूर्ण, दो छटाँक दाल, दो छटाँक कोई मिष्टान्न, छटाँक डेढ़ छटाँक शुद्ध पवित्र घृत, लवण, जीरा, धनिया आदि सभी आवश्यक भोजन सामग्रो साथ में होती था। कोई फल, कोई कृषि का नवीन धान्य बिना गुरु जी को अर्पण किये अङ्ग लगाना पाप कर्म समझा जाता था। लड़के लड़कियों के विवाह आदि की चिन्ता पूर्व पठित शिष्यों को ही होती थी, न कि गुरु जी को। बड़ी सरलता और सहूलियत के साथ ग्रामीण जनता आवश्यक काम चलाऊ शिक्षा प्राप्त कर लेती थी।

धार्मिक शिक्षा का तो अद्वितीय प्रबन्ध था। फुर्सत के

दिनों में रात्रि के समय कथाएँ होती थीं। पंडित जी दिन में कई घंटे तैय्यारी करके रात को कथा सुनाते थे। रामायण और महाभारत की वीर गाथाओं को ग्रामीण जनता बड़े चाव से सुनती थी। दानवीर, धर्मवीर और कर्मवीर पुरुषाओं की अमर कहानियाँ पण्डित जी बड़े रोचक ढङ्ग से सुनाते थे। बच्चों और नवयुवकों को कथा कहानी सुनने में बड़ा आनन्द आता है। मर्यादा पुरुषोत्तम राम, अनासक्त कर्मयोगी कृष्ण, अद्वितीय धनुधर अर्जुन, धर्मावतार युधिष्ठिर, बाल ब्रह्मचारी भीष्म, बज्र-अङ्गी हनुमान, यती संयमी लक्ष्मण, सती सीता, विदुषी गार्गी और मन्दालसा, पतिपरायणा पार्वती और सावित्री, सत्यवादी हरिश्चन्द्र, सत्य संकल्प मोरध्वज, रण-चण्डी दुर्गा आदि वीर-व्रती बालक ध्रुव और ईश्वर भक्त प्रह्लाद आदि की अमर गाथाएँ ग्रामीण बाल-बालिकाओं के स्वच्छ निर्मल हृदय पटलों पर अमिट छाप लगा देने वाली वस्तुएँ थीं, जिनका उनके भावी जीवन पर क्रान्तिकारी प्रभाव पड़ता था। वर्तमान कालीन व्यभिचार, दुराचार, भ्रष्टाचार और समस्त कदाचार की मूल में इनहीं धार्मिक भावनाओं का अभाव ही जान पड़ता है।

अतः प्राचीन कालीन 'राम-राज्य' को पुनः भारत में अव-तरित होते देखने की लालसा हो, तो उसी प्रकार की कार्य प्रणाली कुछ एक सामयिक हेर-फेर के साथ अपनानी होगी। समय और अवसर भी उसके लिये कृपालु परमेश्वर ने स्वतंत्र भारत मे उपलब्ध करा दिये। पञ्चायती राज को 'रामराज' में बदलना न बदलना अब हमारे हाथ की बात रह गयी है। अब हमको अपने मुक़द्दमे तहसील और जिले की अदालतों में ले जाने की आवश्यकता नहीं। वकीलों और मुहर्रिरों को फ़र्शी सलाम झुकाने और भारी फीसें चुकाने की मजबूरी दूर हुई।

झूँठे गवाह ले जाने, मोटर खर्च करने और उन्हें बढ़िया से बढ़िया मिठाइयाँ चटाना अब अनावश्यक है। पेशकारों की पेशी में नाक रिगड़ने से छुट्टी मिली। अब हमको तारीख़ पर तारीख़ पड़ने, धनका चूर्ण कराने, और भारी दिक़्क़तें उठाने की बेबसी नहीं रही। हमको चाहिये कि अब हम स्वतंत्र भारत के सुयोग्य नागरिक बनने का हर समय ध्यान रक्खें। कोई काम ऐसा न करें जिससे भारतीयता कलङ्कित होती हो। पञ्चायतों में पञ्च-लोग परमेश्वर को साक्षी करके बिना किसी प्रकार के पक्षपात, और रू-रिआयत के, विशुद्ध न्याय करें। "दूध का दूध-और-पानी का पानी" सत्य कर दिखाने का अब अवसर है।

ग्राम की सफ़ाई, स्वास्थ्य और शिक्षा का भी पूर्ण ध्यान रखना पञ्चायतों का काम है। विवाहादि और मृतक सम्बन्धी भोज बन्द करके ग्राम सुधार की योजनाओं में धन व्यय करना चाहिये। मल्लशाला, पाठशाला और कथाओं की प्रथा को पुनर्जीवित करना चाहिये। पाठशालाओं का व्यय सरकार करेगी, लेकिन उसकी स्थानीय देखभाल का उत्तरदायित्व ग्राम पञ्चायत पर होना चाहिये। ग्रामीण वाचनालय एवं औषधालयों की स्थापना और प्रबन्ध भी ग्राम-पञ्चायतों की देख-रेख में ही होना चाहिये।

किन्तु यह सब कार्य होगा तबही जब इन पञ्चायतों में पञ्च और सरपञ्च, योग्य, सच्चे, ईमानदार निस्वार्थी, कर्तव्य परायण, सेवा-व्रती और पक्षपात रहित चुने जायँ आशा है ग्रामीण जनता अपने ही कल्याण के लिये योग्य से योग्य व्यक्तियों को चुनेगी और पार्टी बाजी की 'शत-रंजी' चालों से बिल्कुल पृथक रहेगी।

—:०:—

१२—राष्ट्र-निर्माण और म्यूनिसिपैलिटी (नगर-पञ्चायतें)

जो कार्य ग्रामों में ग्राम-पञ्चायतों को करने उचित हैं, वे ही नगरों में नगर-पञ्चायतों (म्यूनिसिपल बोर्डों) को करने आवश्यक हैं। रोमन साम्राज्य प्रारम्भ में 'नगर-राज' ही था। म्यूनिसिपल-बोर्ड वास्तव में नगर की रिपब्लिकन गवर्नमेंट है, नगर की पूर्ण प्रजातंत्र सरकार है। नागरिक प्रजा एवं नगर-प्रजापतियों (सिटी फादर्स) को अब यह बात सर्वतो भावेन ध्यान में रखनी चाहिये। बोर्ड का चिअरमैन ट्रैमैन का सिर्फ छोटा भाई है और उसकी कमैटी नगर-प्रजातन्त्र की राज सभा। जो काम समूचे राष्ट्र-हित के लिये करने पड़ते हैं, वे ही सब नगर-हित के लिये करने आवश्यक हैं। अन्तर केवल मात्रा का है, न्यूनाधिकता है।

सर्व-प्रथम कार्य नगर रक्षा का है। अराजकता जैसे राष्ट्र हित में घातक है, वैसे ही नगर-हित में भी। अतः नगर की पुलिस पूर्णतया म्यूनिसिपैलिटियों के अधिकार में छोड़ देनी चाहिये। यदि आवश्यकता पड़ जाय तो नागरिक जनता नगर रक्षादल स्थापित करे, जो हर प्रकार से पुलिस को सहायता दे। चोरी, जारी, जूआ, नशेबाजी, और गुण्डा गरीका अब अन्त हो जाने चाहिये, जिससे नागरिक प्रजा दिन को निर्विघ्न जीवन के विभिन्न व्यापारों में संलग्न रह सके, और रात्रि को सुख चैन की नींद सोए।

दूसरा आवश्यक कार्य नागरिक स्वास्थ्य का है। इसके लिये ऊपरी उपचारों के साथ-साथ मौलिक बातों पर भी ध्यान देना

आवश्यक है। शुद्ध वायु, शुद्ध जल, और शुद्ध भोजन की व्यवस्था सर्वोपरि है। आजकल नगरों की तंग गलियाँ और गन्दे मुहल्ले नर्क के-धाम बने हुए हैं। जब कभी हैजा, प्लेग और इसी प्रकार की अन्य महामारियों का प्रकोप होता है, तो उनका श्री गणेश उन्हीं मुहल्लों से होता है। ऐसे मुहल्लों के मकानों को बिल्कुल तुड़वाकर वहाँ पर हरे भरे पार्क बनवाने का आयोजन होना चाहिये, और वहाँ के निवासियों के लिये शहर के समीप नयी सुन्दर, हवादार, प्रकाश मयीबस्तियाँ बसा देनी चाहिये। इसके लिये विपुल धनराशि की आवश्यकता होगी। नगर का कोआोप-रेटिव बैंक और भारतीय-राष्ट्र सरकार दोनों को इस आवश्यक कार्यों में पूर्ण साहाय्य प्रदान करना चाहिये। नगर के धनी-मानी पुरुषों का रुपया बैंकों में न केवल सुरक्षित ही रहेगा, अपितु आमदनी का भी साधन होगा। नयी बस्तियों में मकानों के किराये इस प्रकार रक्खे जावें जिससे कालान्तर में वे निवासियों की ही मिल्कियत हो सकें जैसे कि ग्रामों के किसानों की मिल्कियत होने जा रहे हैं उनके जोते-बोए खेत।

याद रखिये, वह समय अब जल्दी आ रहा है जब भंगी लोग टट्टी कमाने का काम न करेंगे, और नाहीं किसी सभ्यपुरुष को अपने किसी मानव-बन्धु से ऐसा घृणित कार्य कराना ही उचित है। अतः अब समस्त नगरों में बम्बई कलकत्ता और दिल्ली आदि बड़े नगरों की भाँति 'फ्लश सिस्टम' जारी करनी पड़ेगी। यह आवश्यक कार्य जितनी जल्दी हो सके प्रारम्भ कर देना चाहिये। शहर की नालियाँ ऐसी बननी चाहिये कि प्रातः सायं नलों द्वारा, तेज़ धारा छोड़ी नहीं, कि नालियाँ स्वयं साफ़ हुई नहीं। सड़कें सब सीमैंटेड हों, जिससे सफ़ाई में भी आसानी हो, और आने में काफ़ी सुहूलियत।

बिजली का विस्तार हो ही रहा है। अतः रोशनी के साथ-साथ अन्य कारोबार के लिये भी वह आसानी से मिलने लगेगी और धुँए की कमी से हवा भी शुद्ध मिलेगी। सड़कें चौड़ी और सीमैंट की बनजाने से फिर धूल-धुँआ और धक्कों से भी मुक्ति मिलनी सम्भव होगी।

नगरों में नलों के प्रबन्ध प्रायः होते ही जा रहे हैं। उचित मात्रा में जल के उपलब्ध होते रहने का प्रश्न रह जाता है। वह भी शनैः शनैः सिद्ध हो सकेगा. इसमें कोई सन्देह नहीं। इस प्रकार शुद्ध वायु और शुद्ध जल की प्राप्ति के पश्चात् शुद्ध भोजन मिल सकने का नम्बर आता है। यह प्रश्न भी बड़ा पेचीदा है। आज तो बाजार में किसी खाद्य वस्तु का शुद्ध रूप में मिलना असम्भव सा हो गया है। दूध घी और मिठाइयाँ तो शुद्ध-पवित्र दशा में मिलती ही नहीं। इसके लिये डियरी फार्मों का खुलवाना म्यूनिसिपल बोर्डों का आवश्यक कर्तव्य है, जहाँ शुद्ध दूध, शुद्ध मक्खन उचित मूल्य पर आसानी से मिल सकें। हलवाइयों की दूकानों पर कड़ी दृष्टि रक्खी जाय। दूकानें साफ़, बर्तन साफ़, सामान साफ़—फिर मक्खियों की भिनभिनाहट भी दृष्टि गत न होगी। ढके पात्रों में मिठाइयाँ रक्खी हों। खुले आम सड़कों पर कोई खाद्य वस्तु खुली हुई दशा में न बेची जाने देनी चाहिये। नक़ली घी का आने देना एक दम बन्द कर देना चाहिये। सार्वजनिक स्वास्थ्य की दृष्टि से हानिकर व्यापारों का रोकना म्यूनिसिपल बोर्ड का धार्मिक कर्तव्य है।

अस्पताल और औषधालय इतनी संख्या में खुलने चाहियें कि आवश्यकता पड़ने पर चन्द मिनटों में उन तक पहुँच हो सके। म्यूनिसिपल वैद्य, हकीम और डाक्टरों को प्राईवेट फ़ीस

लेने की सख्त मनाई कर देनी चाहिये । प्राईवेट डाक्टर प्राईवेट तौर से बुलाए जाने पर, प्राईवेट फीस लें। नरसें और दाइयाँ भी पर्याप्त संख्या में नियुक्त की जाँय । 'फ्री जच्चाघर' होने चाहिये जहाँ साधारण जनता आवश्यकता पड़ने पर जच्चाओं को बच्चा जनने के लिये भेजा जा सके।

निःशुल्क अनिवार्य शिक्षा देना अब आवश्यक हो ही गया है। बोर्डों को अब देखना यह है कि उपयुक्त योग्य अध्यापक प्राप्त हो सकें। अक्षर-ज्ञान और पाठन-योग्यता के अतिरिक्त चरित्रवान होना अध्यापक के लिये अत्यावश्यक है। दुश्चरित्र गुरुओं से सच्चरित्र नागरिक बनाने की आशा दुराशा मात्र होगी। किन्तु योग्य और सच्चरित्र अध्यापक तीस पैंतीस रुपयों पर पहले कुलियों की भाँति भर्ती नहीं किये जाते। आज का कुली तो सौ सवा सौ रुपये मासिक से कम नहीं कमाता। राष्ट्र-निर्माता गुरुओं का मूल्य और हैसियत कुलियों से न्यून और गिरी न बनाइयेगा। पेट वे भी रखते हैं बच्चे उनके यहाँ भी जन्म लेते हैं। उनके लालन पालन और पठन-पाठनादि का प्रबन्ध आप की भाँति उन्हें भी करना ही पड़ता है। हारी-बीमारी उनके यहाँ भी होती है। तिस पर भी रुपये का मूल्य ढाई आने से भी कम रह गया है। आप के दिये पैंतीस रुपये आज पहले पाँच रुपये से भी कम मूल्य के हैं। उनका मासिक वेतन ईमानदारी से अब एक शत से कम न होना चाहिये।

सुसाइटी के दुराचर, भ्रष्टाचार और समस्त कदाचारों से सुरक्षित रखने के लिये आप को प्राचीन भारतीय संस्कृति के प्रचार का भी आयोजन करना आवश्यक है। इसके लिये पुस्तकालय, वाचनालय और सार्वजनिक उपदेशों का भी

प्रबन्ध करना है। प्राचीन उत्सव और त्योहारों को नवीन रूप देना है। मेलों को राष्ट्रीय-रूप देना है। मल्ल-शालाएँ और व्यायाम-शालाएँ खोलनी हैं। टूरनामेंटों का पुनः प्रचार प्रारम्भ करना होगा; इनाम और पुरस्कार देने होंगे। निदान वह सभी कुछ करना होगा जिससे अमर-कीर्ति महात्मा गाँधी का 'राम-राज' वाला स्वप्न सच्चा सिद्ध हो सके। नगर-पिताओं को जगत्पिता की नकल करनी होगी। नहीं तो चुंगी के चुनाव में चुने जाने की चर्चा आपको छोड़ ही देनी चाहिये।

—:०:—

१३—राष्ट्र-निर्माण और ज़िला-बोर्ड

राजा सब समाप्त हो चुके। ज़मींदार भी अब अपनी समाप्ति के दिन गिन रहे हैं। पूर्ण-प्रजातंत्र-राष्ट्र का शीघ्र जन्म होने जा रहा है विधान बन चुका है। यत्र-तत्र कुछ संशोधन और स्वीकारी मात्र शेष है। किन्तु राजाओं के उच्छेद से 'राज-काज' का उच्छेद नहीं हुआ। शासन-कार्य का निर्बाध चलना तो अनिवार्य सर्वदा बना ही रहेगा। अन्तर केवल इतना ही है कि जो शासन-सूत्र पहले एक व्यक्ति के इशारे पर चलता था, अब वह जनता-जनार्दन के पल्ले आपड़ा है। अब किसी एक व्यक्ति को दोषी नहीं ठहराया जा सकता। न किसी गवर्नमेंट को एक मात्र समस्त दुराचार और भ्रष्टाचार का अपराधी घोषित किया जा सकेगा। जिले के बहुत से आवश्यक कार्यों का प्रबन्ध अब जिला-बोर्डों के अधीन होगा। और जिला-बोर्डों के सदस्य जनता ही चुनती है, और भविष्यों में भी चुनेगी। अब जैसे मेम्बर चुने जाँयगे वैसा ही हमारा

'जिला शासन' होगा। जिला-बोर्डों का कर्तव्य होगा कि वे अपने-अपने जिलों में 'राम-राज्य' का नमूना बनाकर दिखाएँ।

सर्व प्रथम ध्यान जिला बोर्डों को जिले की सड़कों पर देना चाहिये। आजकल ऐसा जान पड़ता है कि न केवल जिला बोर्ड के अधिकारियों ने ही, अपितु जिला मजिस्ट्रेट आदि अन्य अधिकारियों ने भी, जिले की सड़कों की तरफ से नितान्त आँखें मींच रक्खी हैं। इक्कों, मोटरों में यात्रा करते समय यम-पुरी की यात्रा-कासा भान होने लगता है। इतने धक्के लगते हैं कि छटी तक की याद आजाती है। लोकल सैल्फ गवर्नमेंट (स्थानीय स्वराज) प्राप्त होने से पहले, जब अँगरेज़ कलक्टर जिला बोर्ड का चिअरमेन होता था, सड़कों की ऐसी दुर्दशा कभी देखने में नहीं आयी। गुलाम को मालिक का बड़ा भय रहता है। वह उसे प्रसन्न रखने के लिये कुत्ते की भाँति सदैव जूते चाटता और दुम हिलाता रहता है। ऐसे किसी काम के करने की हिम्मत नहीं करता जिससे 'स्लेव मास्टर' अप्रसन्न हो जाय। हिन्दुस्तानी ओवर सियर डरते रहते थे कि अगर कोई अङ्गरेज़ बच्चा सड़क से आ निकला, तो कच्चा खा जायगा। भेड़ को भेड़िये का भयङ्कर भय बना रहता था।

किन्तु आज तो 'स्वराज्य' है न? 'स्वतन्त्रता' के स्थान में 'स्वच्छन्दता' का साम्राज्य है। सभी के पेट बढ़ गये हैं। जिधर देखो उधर 'हाऊ-हप्प' का दृश्य दृष्टिगत हो रहा है। और फिर 'तू कह न मेरी, और मैं न कहूँ तेरी' ऊपर से नीचे तक खूब हिस्से बाँट होते हैं। क्या कहें? 'अबे का अबा' ही खराब हुआ जान पड़ता है। यदि यही दशा चलती रहने दी गयी, तो 'राम-राज' तो दूर रहा 'रावण-राज' से भी अधिक दुर्गति हो जायगी, और फिर अन्य कोई भी राज, चाहे 'कम्युनिस्ट-

राज' ही क्यों न हो, लोगों को सहर्ष मान्य होगा। अतः जिला बोर्ड के कांग्रेसी मेम्बरों के अब कान खड़े हो जाने चाहिये। भाई-बन्दों की हित-कामना से अधिक उन्हें अब जनता के हित की बात सोचनी चाहिये। ग्रामों में जाइये। गाँधी टोपी मात्र देख कर लोगों को आग-बबूला होते अपनी आँखों देखा है। बे-तुक गालियाँ सुनाते हैं। स्थिति गल्ले की वसूलयाबी के बेढंगे-तरीकों ने और भी अधिक विषम बना दी है। कांग्रेसी सरकार का इतना दोष नहीं, जितना उसकी पुरानी, लीचड़ और दकियानूसी मैशीनरी का। गर्मी की छुट्टियों में जिला बदाँयू के ग्रामों में कार्य-वश भ्रमण करने का अवसर मिला। वहाँ सुना गया कि अच्छे अच्छे तुङ्गधारियों को गल्ले के थोड़े से शेष भाग के न दे सकने पर मुर्गा बनना पड़ा, जुर्माने और सज़ा ऊपर से पृथक भुगतने पड़े। लोगों को बहुतेरा समझाया कि ऐसा करने के लिये कांग्रेस सरकार ने हरगिज आज्ञा नहीं दी; किन्तु कौन सुनता है? वे तो समस्त अधिकारियों की दुष्ट करतूतों को कांग्रेस सरकार की कृति समझते हैं। कुछ भी हो, बाब-आदम के जमाने की मुर्गा बनाने वाली इन घृणित और अमानुषिक प्रणालियों का अब अन्त हो जाना चाहिये और जिन्होंने इस प्रकार का दानवी अत्याचार किया हो उन्हें उनके पद से अवश्य पतित कर देना चाहिये। भारतीय प्रजातंत्र में ऐसे जघन्य और कुत्सित कर्मचारियों की आवश्यकता नहीं।

दूसरी बात छोटे-छोटे नदी-नालों के पुल, नशेब में जमा रहने वाले पानी के निकास का प्रबन्ध, बाढ़ के समय आने वाले पानी की रोक थाम की आयोजना, ऐसी झीलों के जैसे जिला अलीगढ़ में 'टप्पल' के समीप, और जिला मथुरा में 'नौह' के समीप, पानी का सदुपयोग आदि ऐसी बातें हैं

जिन पर जिला बोर्डों को अविलम्ब रूप से ध्यान देने की आवश्यकता है। यदि ऐसा करने में जिला बार्ड सफल हो सके तो सहस्रों एकड़ भूमि जो आज बेकार पड़ी हुई है स्थानीय लोगों को बहुत शीघ्र धन-धान्य से परिपूर्ण कर देगी और खाद्यान्न के अभाव की पूर्ति में भी सहायता मिलेगी।

तीसरी बात जिस पर जिला बोर्डों का ध्यान शीघ्र से शीघ्र आकर्षित होना चाहिये वह है आये दिन ग्रामों में चोरी और डाँकों की वृद्धि को रोक थाम ये लोग यहाँ पाकिस्तान से नहीं आते। हमारे ही जिलों के भाई बन्द स्वतन्त्रता के वायु-मण्डल और नवीन लाइसैंसों का दुरुपयोग उठा कर ऐसे नीच कर्मों के दोषी बनते हैं। बहुत सी दशाओं में जिला-बोर्डों के मेम्बरों का उनसे भाई चारे और रिश्तेदारी का सम्बन्ध भी होता है, और वे यह सब कुछ अपनी नाक तले होते देखते भी हैं। किन्तु उनमें साहस नहीं होता कि किसी के विरुद्ध जानते हुए भी आवाज़ उठाएँ। किन्तु इस प्रकार की कायरता और दब्बूपन स्वतन्त्र भारत को अब शोभा नहीं देता। सब मिल कर इस प्रकार के दुष्ट कृत्यों के मूलोच्छेद की सफल योजना बनाएँ।

जिले के अन्दर शिक्षा, सफाई, स्वास्थ्य आदि का और व्यापार वृद्धि आदि कतिपय ऐसी बातें हैं जिन पर स्वराज सरकार भी अब समुचित ध्यान देने के लिये उत्सुक जान पड़ती है। उसके साथ पूरा-पूरा सहयोग प्रदान करना जिला-बोर्डों का प्रथम कर्तव्य है।

१४–राष्ट्र-निर्माण और धारा सभाएं

न सा सभा यत्र न सन्तिवृद्धाः, न ते वृद्धाये न वदन्ति धर्मम् ।
नासौ धर्मोयत्र न सत्यमस्ति, न तत्सत्यं यच्छलेनाभ्युपेतम् ॥

स्वराज, जन-राज, गण-राज, जन-तंत्र आदि ऐसे शब्द हैं जिनका अर्थ वही है जो 'प्रजा-तंत्र' का। 'तंत्र' शब्द का अर्थ है—राज, शासन, हुकूमत। अतः 'प्रजा-तंत्र' का आशय हुआ—वह राज, ऐसा शासन, ऐसी हुकूमत जिसका प्रबन्ध प्रजा, पब्लिक, जन-साधारण, राष्ट्र के सभी बालिग़ (समझदार आयु वाले) स्त्री-पुरुष करते हों। यह प्रबन्ध वे अपनी वोटों (मत, राय) द्वारा करते हैं, इससे स्पष्ट है कि शासन की वास्तविक सत्ता, शक्ति, क्षमता जनता की है, न कि एम-एल-ए (धारा सभा के सदस्यों) की। अतः शासक या हाकिम वास्तविक रूप से 'प्रजा' यानी जनता ही है और धारा सभाएं हुई जनता की पुत्रियां जिनपर उनका पूर्ण अधिकार है।

किन्तु क्या हमारे एम-एल-ए बन्धु कभी ऐसा सोचते हैं? मैं समझता हूँ सौ में से एक। शेष निन्यानवे तो, एसेम्बली की कुर्सियों पर बैठ कर मूँछों पर (यदि हों तो) ताव देते हुए अपने को लखनऊ के प्रसिद्ध नवाब आसिफुद्दौला का चचा समझते हैं। हाँ! वोट माँगती बार तो दीन हीन किसानों और मजदूरों तक को दादा, ताऊ, चाचा, मामा जी, फूफा जी मौसा जी, और जीजा जी तक आदि सम्मान-पूर्ण रिश्तों के साथ याद करते थे। मेम्बर चुना जाकर एम-एल-ए महाशय बिल्कुल भूल जाता है और जिनका प्रतिनिधि बनकर धारा-सभा में जाता है, उनके हानि-लाभ जीवन-मरण, और अपने भी यश-

अपयश की लेश मात्र चिन्ता नहीं करता, और न कभी अपने इलाकों में गाहेब गाहे घूमते रहने और लोगों के सुख-दुख को बात पूछने की सोचता है।

उसे यह स्मरण रखना चाहिये कि वह जनता का प्रतिनिधि है, और उसके हिताहित उसके द्वारा सुरक्षित रहने चाहिये। अपने उत्तरदायित्व को पूर्णतया निभा सकने के लिये उसे अपनी योग्यता भी निरन्तर बढ़ाते रहना चाहिये। उसे अपने देश और अन्य उन्नत देशों के प्राचीन और अर्वाचीन इतिहास का अध्ययन करना चाहिये, अर्थशास्त्र और नागरिक शास्त्र की पूर्ण जानकारी होनी चाहिये। उसे यह भी जानना चाहिये कि उन्नत-राष्ट्रों ने अपनी आर्थिक, सामाजिक और राजनैतिक अवस्था किन साधनों के अवलम्ब द्वारा समुन्नत बनाई। जो-जो नवीन बिल सभा के सामने उपस्थित हों, उनपर वह अपनी क्या सम्मति दे सकेगा, यदि वह स्वयं उन बातों का ज्ञाता नहीं ?

गुट्टबन्दी से उसे सर्वदा दूर रहना चाहिये। गुलामी के ज़माने में गुट्टबन्दी की आवश्यकता थी। उस समय तो यह आवश्यक था कि देश-हित विरोधी मामलों में प्रतिपक्षी दल का मुक़ाबला किया जाय। आज तो प्रतिपक्षी दल कोई होना ही नहीं चाहिये। जब सब राष्ट्र-हित के पक्ष में है, तो सब का एक संयुक्त-राष्ट्र-पक्ष ही तो हुआ ? फिर वाम-पक्ष कैसा ? इस मामले में भारत को पश्चिम की नक़ल हरगिज़ न करनी चाहिये। हमारे यहाँ सोशलिस्ट, कम्यूनिस्ट, लेबर, उदार, अनुदार आदि अनेकों दलों की आवश्यकता नहीं। हमें तो केवल एक भारत राष्ट्र-हित-दल की आवश्यकता है और सबको मिलकर उसी एक हित साधन की चिन्ता करनी चाहिये।

हमारा तो एक ही स्वार्थ और एक ही दल होना चाहिये। यदि भिन्न-भिन्न दलों की बीमारी लगी रही तो, फिर दलों की संख्या गिननी कठिन पड़ जायगी। प्रत्येक समाज और जाति-उपजाति अपना पृथक दल बनाने का प्रयत्न करेगी, और हमारी सभाएँ आठ कनौजिये और नौ चूल्हे वाली बात सिद्ध करके दिखाने का दम भरेंगी। फिर तो भारत-राष्ट्र, भारत-राष्ट्र न रहकर, सम्प्रदाय-राष्ट्र बन जायगा। कांग्रेस भी इन अर्थों में एक सम्प्रदाय ही है। उसे भी अब अपने को महात्मा जी के उपदेशानुसार केवल एकमात्र राष्ट्र-दल में ही विलीन हो जाना चाहिये। जब राष्ट्र-हित में राजाओं के राज्य तक विलीन हो रहे हैं, जमींदारियाँ विलीन हो रही हैं, सरमायेदारियों के भी विलीन करने की आगे चलकर स्कीम बननी ही है, तो फिर रह क्या गया? ऐसी दशा में कांग्रेस भी क्यों न एक मात्र 'राष्ट्र-हित दल' में अपने को विलीन कर दे? सब मिलकर एक ही आवाज लगाएँ कि देश का योग्यतम दिमाग़ शासन-सूत्र में पहुँचे। यदि ऐसा हुआ तो फिर हमसे बढ़कर कौन 'कम्यूनिस्ट-राष्ट्र' होगा? सबका एक दल, एक स्वार्थ और इसलिये एक-राष्ट्र, एक साधन और एक-से सबको उन्नति के अवसर। फिर हमारा भारतीय राष्ट्र आदर्श, आस्तिक, शान्त और कम्यूनिस्ट-राष्ट्र होगा।

१५—राष्ट्र-निर्माण और वोटर (मतदाता)

वेदों में हमें राष्ट्र, महाराष्ट्र और गण-राज्यों का उल्लेख मिलता है। प्रत्येक गण का शासक चुना जाता था जो गणपति या गणाधिपति कहलाता था। उसके आधीन उसकी

सहायता के लिये तीन सभाएँ होती थीं—न्याय-सभा, विद्या-सभा और राज या शासन-सभा। गणपति को राष्ट्र-पति, नृपति या राजा के नाम से भी पुकारते थे। गण का सर्व श्रेष्ठ पुरुष गणपति पद ग्रहण करने के लिय बुलाया जाता था, जिसे वैदिक भाषा में 'आवाहन' करना कहते हैं। 'आवाहन' शब्द का अर्थ भी बुलाना ही है। पूजा सत्कार भी उसका देवताओं का सा था। 'गण-पति' भी अपने को परमेश्वर का प्रतिनिधि समझता था, और 'जगत्पति' की भाँति ही निष्पक्ष भाव से न्याय-पूर्ण शासन करता था। वह स्वेच्छाचारी भी न होता था। अपनी तीनों सभाओं का उसे पूर्ण साहाय्य प्राप्त होता था।

धीरे-धीरे कालान्तर मे आवाहित 'गण-पति' ने जन्म-गत राजा का पद ग्रहण किया; किन्तु सभाएँ उसकी ज्यों की त्यों बनीं रहीं। महाराज दशरथ के समय में यही रीति वर्तमान थी, इसका पता हमें बाल्मीकि रामायण से मिलता है। महाराज दशरथ को अपने ज्येष्ठ पुत्र राम को युवराज-पद प्रदान करने के लिय अपनी राज-सभा की अनुमति लेनी पड़ी थी। अपनी स्वतत्र मर्जी से वे उन्हें युवराज नहीं बना सकते थे। त्रेता युग के अन्तिम दिनों में ही राजा स्वेच्छाचारी होने लगे थे, और इसीलिये परशराम जी को ऐसे इक्कीस राजाओं को राज सिंहासन से च्युत करना पड़ा। अत्याचारी रावण का वध भगवान राम को भी करना पड़ा था।

भगवान कृष्ण के समय में तो स्वेच्छाचारिता की हद हो गयी थी। शिशुपाल, कंस और जरासिन्ध आदि अत्याचारी राजाओं के नामों से सभी हिन्दू जनता परिचित है। जो कार्य परशराम और भगवान राम को करना पड़ा वही द्वापर के अन्त में भगवान कृष्ण ने भी किया, और कौरवों का सर्वनाश कर पाण्डवों का धर्म-राज स्थापित किया।

जमाना बदलता ही रहा। भारत पुनः छोटे-छोटे राज्यों में विभक्त हुआ। परस्पर के स्वार्थ, फूट और कलह ने यहाँ अड्डा जमाया। यवन शासन के अत्याचार सहे। तत्पश्चात् गौराङ्ग महाप्रभुओं का पदार्पण हुआ। उनका अर्थ-शोषण सहा। जितना आर्थिक और नैतिक पतन इस सात समन्दर-पार की गोरी जाति के दुश्शासन-काल में हुआ वैसा पहले कभी नहीं देखा गया। किन्तु कृपालु परमात्मा की पुनः कृपा हुई और जैसे रावण के अन्त के लिये राम, कंस के अन्त के लिये कृष्ण, इसी तरह बृटिश गवर्नमेंट के अन्त के लिये हमें गाँधी दिया। परशराम ब्राह्मण थे, भगवान राम और कृष्ण थे क्षत्री। गांधी बनिये के रूप में प्रकट हुए। ब्रिटिश-राज भी बनियाँ राज ही था। ईस्ट इंडिया कम्पिनी व्यापारी कम्पिनी ही थी। बनियाँ से बनियाँ ही भिड़ा, और ऐसी मीठी मार दी, कि नसलदर नसल सदियों कराहेंगे। साम्राज्य का ही अन्त कर दिया, और निकाल बाहर करने में किसी गोला-बारूद की आवश्यकता भी न पड़ी। विश्व के राष्ट्रों को स्वतंत्र होने में खूनों की नदियाँ बहानी पड़ी हैं।

दूसरी विचित्र बात गांधी के अनन्य-भक्त शिष्य पटैल ने कर दिखायी है। राजा और नवाब नाम की वस्तु अब इस पुण्य भूमि में देखने को न मिलेगी। विश्व-इतिहास में यह भी अद्वितीय बात हुई है। जमींदारी का अन्त अब होने जा रहा है। किसान अपनी भूमि के मालिक होंगे। इसके साथ ही साथ देश का शासन भी उनका अपना होगा। उनके प्रतिनिधि उनकी ओर से शासन-सूत्र अपने हाथ में सम्हालेंगे। विधान बन चुका है। उसकी स्वीकृति के पश्चात् चुनाव होंगे। अब वोटरों की परीक्षा का समय आ रहा है। उसे अभी से सावधान होने की आवश्यकता है। उन्हें देश के सर्वश्रेष्ठ और योग्यतम

प्रतिनिधियों को विभिन्न सभाओं में भेजने हैं, चाहें वे नगर सभा हों, जिला सभा हो, प्रान्तीय सभा हों, या केन्द्रीय सभा। दलबन्दी का ध्यान बिलकुल न रक्खा जाय। कम्यूनिस्ट, सोशलिस्ट, कांग्रेस, हिन्दू सभा, स्वतंत्र सभा किसी की रूरिआयत नहीं करनी। जो व्यक्ति सच्चा, ईमानदार, सच्चरित्र, विद्वान, परिश्रमी, जनता का हित-चिन्तक, आज़माया हुआ और योग्यतम जान पड़े, उसी के लिये मत दिया जाय, अन्य के लिये नहीं। जैसे व्यक्ति भेजोगे वैसी ही सरकार बनेगी। अनुचिन और अयोग्यों को वोट देना अपने पैरों आप कुल्हाड़ी मारना होगा। कोई लोभ, कोई लालच, कोई भय वोटरों को विचलित न करने पावे। केवल देश-हित और कर्तव्य पालन कर सकने की समस्या सम्मुख हो।

—:०:—

१६-राष्ट्र-निर्माण और राज-कर्मचारी

अब से ठीक बत्तीस वर्ष पूर्व की बात है। खुर्जे से विक्टोरिया हाईस्कूल-आगरे में अध्यापक होकर गया था। सन्ध्या समय लाइब्रेरी में कदाचित् 'इण्डिपैंडैंट' अख़बार पढ़ रहा था? अचानक 'वोज़ ऑव डैप्यूटी कलैक्टर्स (डैप्यूटी कलक्टरों की दुर्गति) शीर्षक अग्र लेख दृष्टि-गत हुआ। बड़ी उत्सुकता के साथ पढ़ा। मेरे कान खड़े हो गये। बचपन में मैंने अपने गाँव में अन्य ही दृश्य देखे थे। गाँव के अन्दर एक भी लाल पगड़ी वाला आ गया तो समझो कोई आफ़त आने वाली है। दारोग़ा आ गया तो समझ लो कि स्वयं यमराज चले आये हैं। तहसीलदार को यमराज तो नहीं समझते थे, किन्तु सनसनी गाँव में

उसके आगमन पर भी अवश्य फैल जाती थी। और अगर डिप्टी साहब कहीं तशरीफ़ ले आये, तो मानों कोई राजाधिराज आ पधारे हैं। ग्रामीण जनता अपने रोमने-रोने के लिये भीड़ की भीड़ में उनके घोड़े के पीछे लगी फिरती थी। मैं सोचा करता था डिप्टी साहब बनना जीवन का चरम उद्देश्य है।

पत्र के सम्पादक ने दूसरा ही नक़शा खींच रक्खा था। वास्तव में डिप्टी हुए, असिस्टेंट हुए. मजिस्ट्रेट से दूसरे दर्जे के हाकिम होने चाहिये। लेकिन भारत उस समय ग़ुलाम देश ठहरा हिन्दुस्तानी बड़े से बड़ा हाकिम अपने को अंग्रेजों का दास ही समझता था। उनकी मनोवृत्ति ही ऐसी बन चुकी थी। मुझे एक ऐसे सज्जन के विषय में पता है जो अपने एक मातहत अंग्रेज की कोठी पर नित्य सलाम करने जाया करता था। हमारे गवर्नमेंट हाई स्कूल अलीगढ़ में बीसवी शताब्दि के प्रारम्भिक वर्षों में कूपर साहब हैडमास्टर थे। जिले के कलक्टर से उसकी लेडी का घनिष्ठ सम्बन्ध था। बस ! जिले के हिन्दुस्तानी बड़े से बड़े रईस कूपर साहब के क्रीत-दास बने थे। एक बड़े रईस को, जिसे लोग राजा साहब के उच्च नाम से पुकारते थे. मैंने स्वयं अपनी आँखों से उसे कूपर की कुर्सी के सामने चपरासी की तरह खड़ा देखा। मुझे बड़ा तरस आया और राजा साहब की बेवकूफ़ी पर क्रोध का आवेग भी हो आया ?

हाँ ! मैं कुछ बहक गया। इन डिप्टिओं का दर्जा, जंटों से कहीं गिरा हुआ समझा जाता था। एक अँगरेज गोरे चमड़े का छोकड़ा, जिसे तजुर्बे की ए० बी० सी० भी नहीं आती अभी ताजा आई० सी० ऐस० पास करके डाईरैक्ट इंगलैण्ड से चला आ रहा है। अपने को एक योग्य, तजुर्बेकार, वयोवृद्ध हिन्दुस्तानी डिप्टी को, जो उसे पन्द्रह वर्ष तक शासन के राज समझा

सकता है, अपना ग़ुलाम समझता था, और डिप्टी साहब समझते थे उस अबोध बछेड़े को अपना बड़ा आका। यदि कभी डिप्टी साहब को किसी जंट या स्वयं कलक्टर से उसकी कोठी पर मिलने जाना होता, तो कोठी के अहाते से दूर गाड़ी खड़ी करते, कुत्ते की भाँति धीरे-धीरे कोठी की तरफ कदम बढ़ाते; कभी २ घंटों बग्घीख़ाने में पड़ी कुर्सी नशीन हो, साहब बहादुर की राह देखनी पड़ती। ज्यों ही देवाधिदेव के दर्शन हुए, फ़ौरन झाड़-पोंछ कर खड़े होते, और लगते ज़मीन तक झुककर फ़र्शी सलाम झुकाने। सिवाय 'जो हुकुम' के दूसरा शब्द आगन्तुक महाशय की ज़बान शरीफ़ से न निकल पाता था, इतना आतङ्क था। काम में पिसते थे डिप्टी, और मौज करता था मजिस्ट्रेट। ग्रामीण कहावत ठीक है 'खोदत-खोदत मूँसे मरि गये, मौज करी भुजङ्गने''। विदेशी ज़हरीले साँपों से परमेश्वर ने बड़ा मुश्किल से पिण्ड छुड़ाया है। स्वर्गीय लाला लाजपत राय कहा करते थे कि भारत का बड़े से बड़ा व्यक्ति चाहे वह राजा, महराजा और नवाब आलीजाह ही क्यों न कहलाता हो विदेशों में नीची गर्दन करके चलता था। ग़ुलामी का भूत उसे शिर ऊँचा उठाने में सदैव दबाता रहता था।

किन्तु ऐ दरोग़ो! कोतवालो!! तहसीलदारों!!! हज़ार-हज़ार शुक्र मनाओ जगन्नियन्ता परमेश्वर का और शतशः धन्यवाद दो स्वर्गीय महात्मा गाँधी को। अब तुम्हारी उस दुर्गति के दिन समाप्त हुए। अब तुम्हें किसी विदेशी पाजी की ठोंकरें खाने का अवसर न पड़ेगा। किन्तु मुआफ़ करना, तुम्हारा पाजीपन अभी तक दूर नहीं हुआ। तुम अब भी अपने देश-बन्धु, लब्ध-प्रतिष्ठ, और निर्दोष विद्वान से विद्वान व्यक्ति को हथकड़ी डाल कर घुमाने में अपनी शान समझते हो। अच्छे २ शरीफ़ लोगों को मुर्गी बनाने में नहीं हिचकते। याद रक्खो! अभी जनता पूर्णतया

जागृत नहीं हुई, नहीं तो ऐसे नालायक पब्लिक सर्वेंटों का एक एक दिन में काला मुँह कर के निकाल बाहर किया जाया करेगा! होश में आ जाने का समय आ गया है। तुम जनता के हाकिम नहीं, महकूम हो। अमानुपता का व्यवहार तुम चोर और डाँकुओं के साथ भी नहीं कर सकते। शासन का कार्य जुर्मों को रोकना, और सुधार करना है, न कि उन्हें करने देने की ढील देना, और फिर अमानुषिक दण्ड देना।

जनता में तुम सब, चोटी के चन्द महान आत्माओं को छोड़कर काफी बदनाम हो चुके हो। सत्य बातें तुम्हें तीर की तरह चुभती होंगी। किन्तु सत्य है भी सबसे कटु। उससे चिढ़ने की आवश्यकता नहीं। जो बातें तुम्हें और तुम्हारे पूर्वजों को अच्छी नहीं लगती थीं, वे भला किसको भली लग सकेंगी? सौभाग्य से अब सबको स्वाधीनता नसीब हुई है। सबको उसका आनन्द लूटने दो। स्वच्छन्दता को बेशक रोको। प्रजा को स्वाधीनता के योग्य आचरण करना सिखाओ। स्वयं सभ्य बन कर सुन्दर आदर्श उपस्थित करो। स्वयं न घूँस और रिश्वत लो, और न अपने मातहतों को यह नीच कर्म करने दो। तुम्हारे स्वयं शुद्ध हुए बिना जनता की शुद्धि असम्भव है। तुम शिक्षित हो, और वह है अशिक्षित। अपना काम निकालने के लिये वह तुम्हारे सामने टुकड़े डालती है, तुम दुम हिलाकर उन्हें लपकने को अब उद्यत न हो। स्वतंत्र भारत में तुम्हें यह श्वान-वृत्ति शोभा नहीं देती। यदि अखबारों में लिखी बातें सत्य हों, तो अब उनसे तोबा करो प्रायश्चित् करो। तब तुम सच्चे मानियों में पब्लिक सर्वेन्ट बन सकोगे।

—:०:—

१७—राष्ट्र-निर्माण और राजनैतिक दलबन्दी

बहवो यत्र नेतारः सर्वे पण्डित मानिनः।
सर्वे महत्व मिच्छन्ति तद्वृन्दमव सीदति॥

ऊपर दिया हुआ नीति का श्लोक सहस्रों वर्षों के राजनैतिक अनुभवों का निचोड़ है। नेता बनना कौन नहीं चाहता? किन्तु नेता बनने की योग्यता कितनों में होती है? सभी को अपने पाण्डित्य का अभिमान होता है। मूर्ख भी यही समझता है कि मुझ-जैसा-चतुर शायद ही हो। महत्व भी सभी चाहते हैं, किन्तु महत्व-प्राप्त करने के साधनों में कितने संलग्न दिखाई देते हैं? फल भी प्रत्यक्ष देखने में आता है। नेता वही बनता है जो नेता बनने की क्षमता रखता है, और वैसे काम भी करता है। जहाँ अयोग्य और अनधिकारी लोगों के हाथ में बागडोर आ जाती है, वहीं बधिया बैठ जाती है। इसीलिये श्लोक में कहा गया है:—

"जहाँ बहुत से नेता उठ खड़े हों, और सबके सब अपने को राजनीति-विशारद बनने का अभिमान करने लगें, और सब के सब उच्च पदों के लिये स्पर्धा करने लग जाँय, तो समझ लीजिये वह सारा समुदाय नष्ट-भ्रष्ट होने वाला है।"

यही दशा हमारे इस अभागे देश में स्वराज-प्राप्ति के पश्चात् देखने में आरही है। हर किसी ऐरे-गैरे-नत्थू-खैरे के मुँह में मिनिस्टरी के लिये पानी छल-छला रहा है। माल जो मुफ्त मिल रहा है न! जब डण्डे पड़ते थे, जेल में चक्की

चलानी पड़ती थी, घर का काम-काज छूटना था, तब भाई! क्यों तुम दबाते थे? गाँधी टोपी तक पहनना गुनाह समझते थे। अल्पक का कोट पहन-पहन कर कुछ भाई अँगरेज अफ़सरों की चापलूसी में अहोभाग्य समझते थे। और तो और हमारे ही भाई पिछले यूरोपीय युद्ध को लोक-युद्ध कहकर अपने अँगरेज ताउओं की मदद के नारे बुलन्द करते थे। अमर शहीद, स्वनाम-धन्य, भारत-माँ के लाड़ले सुपुत्र स्वर्गीय सुभाष चन्द्र बोस तक को कौमी ग़द्दार पुकारते हुए भी लज्जित न होते थे। आज वे भाई किसान और मजदूरों के हित-चिन्तक बनने का दावा करते हैं। इसी प्रकार और भी दल हैं जो राजनैतिक सन्तापों की तपिश से सदैव दूर रहे, वे भी आज हिन्दू-हितों की दुहाई दे लीडरी का दम भरते हैं। कुछ भाई ऐसे भी हैं, जिन्होंने सन्ताप तो अवश्य सहे, किन्तु किन्हीं कारण-विशेषों से हिस्सा-बाँट में मन माना भाग न मिल सकने पर प्रमुख-संस्था से किनारा कर गये और नवीन दल-निर्माण में संलग्न हो गये। उन्हें स्वार्थ-वश जननी-जन्म भूमि का, जिसके लिये उन्हों ने सर्वस्व स्वाहा किया, अहित न करना चाहिये। आज तो एक ही दल की आवश्यकता है—अर्थात् सत्य, न्याय और अहिंसा वादियों का दल। उसमें सब के लिये बराबर अवसर होना चाहिये।

१८—राष्ट्र-निर्माण और पूँजी-पति

लुक़मान हकीम बड़े प्रसिद्ध दार्शनिक हो गुजरे हैं। उनसे एक दिन किसी ने पूछा—"श्रीमन्! आपको इतना बुद्धिमान किसने बनाया?" उत्तर दिया—मूर्खों ने! बात कुछ हँसी-की-सी है; किन्तु है बीसों बिस्वे सत्य। मनीषी मनुष्य वह है जो

आस-पास की घटनाओं से सबक सीखे। जमाना बड़ी तीव्र गति से बदल रहा है। राज-मुकुट शिर से उतर गये, नवाबियाँ काफूर हुईं, जिमीदारियाँ समाप्त होने जा रही हैं। अब नम्बर पूँजीपतियों का आने वाला है। यार लोगों की निगाहों से वे भी अछूते नहीं हैं। सम्हलने का अभी समय है। दान और लूट एक तरह से दोनों भाई-बहन हैं। पूँजी से पृथक दोनों दशाओं में होना पड़ता है। किन्तु वास्तव में दोनों के बीच में जमीन आसमान का अन्तर है। एक का परिणाम आन्तरिक आल्हाद और दूसरी का मार्मिक शोक और हाय-हाय। दान आप चाहे हरिश्चन्द्र और महाराज रघु की नाईं सर्वस्व कर डालिये, फिर भी चित्त शान्त और प्रफुल्लित रहेगा, और व्यर्थ नष्ट या छीना हुआ एक पैसा भी कसकेगा।

तब कैसा अच्छा हो यदि पूँजी-पति स्वेच्छा से अपनी मिलें और कारखानों में अपनी समस्त पूँजी लगाकर देश की समस्त आवश्यक वस्तुएँ जो आज विदेशों से मँगानी पड़ती है तैयार कराएँ और अपने मजदूरों को काफी वेतन और सुविधाएँ दें। मजदूरों की खुशहाली में उनकी खुशहाली छिपी है। यदि अच्छा पर्याप्त भोजन, सुन्दर वस्त्र, आराम देने वाले मकान, बच्चों के लिये पढ़ने-लिखने के साधन मिलेंगे तो वे कदापि दूसरों के बहकाने में न आवेंगे। जैसे राष्ट्र-पति प्रजा का पिता है, वैसे ही कारखाने का स्वामी भी अपने भृत्यों का पिता है। "भृत्य" शब्द का अर्थ ही यह है कि जिनका भली भाँति भरण-पोषण किया जाय। यदि अपने बच्चों को और उनके बालबच्चों को सम दृष्टि से सचमुच देखने लग जाओ, तो फिर तुम्हे साम्यवाद से कोई खटका नहीं। तुम भी मौज से जीवन यापन करो, और वे भी आनन्द मनाएँ। व्यर्थ पूँजी का ढेर इकट्ठा करने में दिन-रात सौ जोखों!

१६—राष्ट्र-निर्माण और मध्यमवर्गीय शिक्षित-समुदाय

भारतवर्ष मुख्यतया कृषि-प्रधान देश है। प्रतिशत नब्बे की जन-संख्या किसान और मजदूरों की है। अतः जिस किसी राज-नैतिक दल को वोटें बटोरने की जितनी लालसा होती है वह उतना ही अधिक किसानों और मजदूरों के हितों की दुहाई देता है। अपना सारा पाण्डित्य और राजनैतिक कौशल उनकी दुर्दशा दर्शाने में समाप्त कर देता है। अन्यथा यदि सत्य पूछा जाय तो सच्चा स्वराज इन दो को ही मिला है। राज गये, पाट गये, नवाबी खत्म हुईं जमींदारियाँ नष्ट हुईं, कंट्रोलों ने व्यापार चौपट किया, दुख ही दुख देखने में आया। सुख-सी चीज यदि किसी को मिली तो वह किसान और मजदूर को। सोना चाँदी खरीदता हुआ यदि सराफे में मिलेगा तो आपको किसान मिलेगा। ग्रामों में यदि पक्की हवेलियाँ बनती दिखायी देंगी तो किसानों की, असली कनक-गेहूँ खाता मिलेगा तो किसान, खालिस घी-दूध खाता-पीता यदि पाओगे तो किसान को। कहा करते थे कि बारह बरस में घूरे की भी हवा बदलती है, सो किसान और मजदूर की बदली है। मजदूर और कारीगर ने अपनी मजदूरी भी अठगुनी बढ़ा दी है।

किन्तु, इस स्वराज की चक्की में यदि कोई पिसा है तो वह मध्यम वर्ग का शिक्षित समुदाय है। मुझे एक दो-सौ रुपये मासिक पाने वाले सज्जन के बच्चों की बात याद आ गयी। बहन अपने भाई से कहती है—भइया! पहले इस सीमेंट की रोटी को खा लें, गेहूँ की रोटी को पीछे से खायेंगे।" विचारों

ने पहले कभी बाजरे की रोटियों के दर्शन नहीं किये थे। [illegible]-महा-प्रभु ने सीमेंन्ट की शकल की बज्र-मयी रोटी बच्चों को खिला दीं। नव्वे प्रतिशत मध्य वर्गीय शिक्षित कहलाने वाले सज्जनों के बच्चे घी-दूध के लिये तरसते हैं। जैसी दुर्दशा इनकी है वैसी किन्हीं की नहीं। फिर भी बिचारे ज्यों-त्यों दिन काट रहे हैं। गवर्नमेंट को वस्तुओं के मूल्य घटाने में भागीरथ प्रयत्न करना चाहिये। यदि ये लोग परिस्थिति-वश पतित हो गये तो सारा देश पतित हो जायगा, क्योंकि जनता का सम्पर्क मिनिस्टरों से नहीं पड़ता, उसके मार्ग-प्रदर्शक दैनिक-जीवन में येही मध्यवर्गीय शिक्षित लोग हैं। यदि इनकी सुध न ली गयी तो इनके द्वारा कम्यूनिज्म की आग भड़कने में बड़ी सहायता मिलेगी। सच्चे मानियों में दुखी आज मध्यम वर्ग ही है। देश प्रायः अशिक्षित है, और मूर्खों का बहकाना कोई बड़ी बात नहीं।

—:०:—

२०—राष्ट्र-निर्माण और पिछड़े-भाई

प्राचीनकाल की आदर्श वैदिक वर्णाश्रम-व्यवस्था का जितना दुरुपयोग हम हिन्दुओं ने किया, उतना कदाचित् ही अन्यत्र किसी कल्याणकारी व्यवस्था का हुआ हो! मानव-समाज के स्वभाव सिद्ध चार ही विभाग सम्भव हैं—एक वह जो मस्तिष्क-सम्बन्धी कार्य करें—इनमें अध्यापक, उपदेशक, सम्पादक, वैज्ञानिक, वैद्य, डाक्टर, राजनीतिज्ञ, आदि सम्मिलित हैं। ज्ञान के लिये संस्कृत के कोषों में जहाँ अन्य शब्द मिलेंगे वहाँ प्रमुख शब्द 'ब्रह्म' मिलेगा। अतः जिनका सम्बन्ध ब्रह्म यानी ज्ञान से हो वे ही सच्चे ब्राह्मण समझे जाते थे, और सदा समझे भी जाने चाहिये।

दूसरा वर्ग वह समझिये जिनका मुख्य कर्तव्य प्रजा-रक्षण है—इनमें पुलिस, फौज, परगना, तहसील, म्यूनिसिपल बोर्ड, जिला-बोर्ड, एवं जिले के सभी प्रकार के कर्मचारी सम्मिलित हैं जो प्रजा के सुख चैन का ध्यान रखते हैं, और उसे हर प्रकार की हानि से सुरक्षित रखने का प्रयत्न करते हैं। हानि के लिये संस्कृत का परियायवाची शब्द 'क्षति' है। अतः जो समुदाय प्रजा को 'क्षति' से सुरक्षित रक्खे वही 'क्षत्रिय' हुआ।

तीसरा वर्ग सबसे विस्तृत वर्ग है—इनमें किसान और व्यापारी वर्ग सम्मिलित हैं। प्रजा का अधिकतर भाग इन्हीं लोगों का है। प्रजा के लिये संस्कृत में 'विश' शब्द का प्रयोग होता है। अतः ये लोग 'वैश्य' कहलाये।

चौथा वर्ग कारीगर और दस्तकारोंका है जो कृषि और व्यापार में काम आने वाली वस्तुएँ बनाते हैं। मानव समाज में इन भाइयों को 'शूद्र' नाम दिया गया। इस विभाग मे ऊँच-नीच का कोई विचार न था। एक ही घर के सब लोग एक ही काम नहीं करते। अपनी अपनी रुचि के अनुसार कोई खेती करता है, कोई दूकानदारी करता है, किसी को नौकरी पसन्द है। इसी कारण गुण-कर्म-स्वभावानुसार पेशे पसन्द किये जाते है। ये पेशे किसी को ऊचा-नीचा नहीं बनाते।

किन्तु दुर्भाग्य से हमने अपने शूद्र कहलाने वाले भाइयों को समता का स्थान नहीं दिया। इसीलिये वे उन्नति की दौड़ में बहुत पिछड़ गये। सौभाग्य से अब उनके दिन फिरे हैं। कांग्रेस सरकार ने उनकी उन्नति के विविध साधन उपस्थित किये हैं। उनके बच्चों की फीसें मुआफ की हैं, पुस्तकें देती है, वजीफे देती है। उनके लिये उच्च नौकरियों के दर्वाजे खोल दिये हैं। अब इन भाइयों को चाहिये कि इन सुभीतों से पूरा-पूरा लाभ उठावें। ऊँचा उठने के दो ही साधन हैं—एक विद्या

और दूसरा धन-सम्पत्ति। एक भी बालक-लड़का या लड़की अब बिना विद्या पढ़े न रहे। पंचायतें करके छोटी उमर के विवाह रोकने चाहियें, शराब और ताड़ी पीना एकदम बन्द होना चाहिये। बीड़ी और सिगरेट के खर्च घटने चाहिये, सिनेमा देखने की आदत छुटनी चाहिये। ब्याह शादियों के खर्च कम होने चाहिये। इनके स्थान में सुन्दर, साफ और हवादार मकान बनने चाहिये। जीवन के सभी नियम ऊँचे होने चाहिये। फिर देखें कौन माई का लाल तुम्हें नीच खयाल करे? विश्वास करो वे दिन बड़े शीघ्र दौड़े चले आ रहे हैं जब तुम जिलों के अफ़सर होगे, और ब्राह्मण क्षत्रिय वैश्य बनने का दावा करने वाले तुम्हारे नीचे क्लर्की करते और तुम्हें झुककर सलाम करते नज़र पड़ेंगे।

—:०:—

२१—राष्ट्र-निर्माण और जराइम-पेशा भाई

कहावत मशहूर है किसी कुत्ते का बुरा नाम रख दो, उसे धुधकारो और लातें लगाओ, कुछ दिनों में अच्छी से अच्छी जाति का कुत्ता लैंडी कुत्ता बन जायगा। यही प्राकृतिक नियम सर्वत्र लागू होता है। जिन बच्चों को प्रारम्भ से ही माता-पिता सभ्यता की बोल-चाल और शिष्ट-व्यवहार सिखाते हैं वे अनायास सभ्य बन जाते हैं, दूसरे पढ़ने-लिखने के बावजूद जंगली आदतों के शिकार बने ही रहते हैं।

सुनते हैं जिन्हें आज हम जङ्गली जातियों के नाम से पुकारते हैं, उनमें से कई क्षत्रिय जातियाँ थीं, जो मुसलमान

शासकों के अत्याचार से तंग आकर पहाड़ों और जंगलों में शरण लेने के लिये जा बसीं। तब से उनका सम्पर्क बन-पशुओं में रहा और इसलिये वे भाई पशुवत बन गये। कुछ भी हो—हैं वे मानव-समाज के हमारे ही बन्धु और इस नाते उन्हें उन्नत बनाना स्वतन्त्र भारत के प्रत्येक समझदार व्यक्ति का कर्तव्य है। यदि तन से उनकी सेवा न हो सके तो मन से और धन से तो उनकी उन्नति में योग देना आवश्यक है ही। व्याख्यानों द्वारा, ट्रैक्ट आदि वितरण करके, अखबारों में लेखों द्वारा जितना हो सके उन्हें उन्नत बनाने का आन्दोलन करना चाहिये।

हम अमरीका के नीग्रो और अफ्रीका के हबशियों के लिये सहानुभूति प्रदर्शित करते हैं, किन्तु अपने ही देश के इन बनवासी भाइयों की ओर से आँखें मूँदें बैठे हैं। हमारे गौरांग-महाप्रभुओं ने इन्हें 'जरायम पेशा' कहलाने की पदवी प्रदान कर दी। फिर क्या था! उन्हें जुर्म करने का लाइसैंस मिल गया। जुर्म करेंगे और फिर करेंगे। पुलिस के पहरे में रखिये रोज हाजिरी लीजिये; तालों में बन्द कीजिये; किन्तु उनके मन पर ताला कौन सा कोतवाल जाकर लगाएगा? अतः आवश्यक है कि पहिले उनसे 'जरायम पेशे' की राय-बहादुरी छीनिये; सभ्य समाज के साथ उनका धीरे-धीरे सम्पर्क बढ़ाने का प्रयत्न कीजिये। उनके नवयुवकों में से जो तीव्र बुद्धि जान पड़ें उन्हें विशेषतया शिक्षित बना कर उनके अन्दर प्रचार के लिये छोड़ दीजिये, अच्छी वर्दी पहनाइये, अच्छा वेतन दीजिये; उनके बच्चों के लिये स्कूल खोलिये; और उनकी शिक्षा का पृथक विभाग खोल कर किसी अनुभवी शिक्षा-कला-विशेषज्ञ जो उनसे हार्दिक सहानुभूति रखता हो ऐसे महानुभाव की अध्यक्षता में रख दीजिये। हमारे युक्त प्रान्त में कञ्जड़, हाबूड़े,

अहेरिया, सपेरे, भूभरिया आदि कई जातियाँ ऐसी हैं जिनके उद्धार की व्यवस्था शीघ्र होनी चाहिये। यदि इनकी शिक्षा-दीक्षा का प्रबन्ध गाँधी-फंड से प्रारम्भ कर दिया जाय तो इससे बढ़ कर उस पवित्र धन का सदुपयोग दूसरा नहीं हो सकता। पतित-पावन के वे भक्त थे, पतित-पावन बनने का उन्होंने जीवन-पर्यन्त भागीरथ प्रयत्न किया। अतः उनके स्वर्गारोहण के पश्चात् भी उनके नाम पर इकट्ठा किया हुआ धन पतित-पावन कार्यों में ही व्यय होना चाहिये। व्यर्थ के प्रदर्शन-मात्र में नहीं।

२२—राष्ट्र-निर्माण और जनता

"यथा राजा तथा प्रजा" ऐसी जन-श्रुति प्राचीन काल से चली आ रही है। लोग कहेंगे—राजा तो अब दिखायी नहीं देते, अतः कहावत भी अब पुस्तकों से निकाल देनी चाहिये। इंगलैंड देश में एक दूसरी कहावत प्रचलित है—King never dies अर्थात् राजा कभी नहीं मरता। साधारण दृष्टि से यह बात भी असम्भव सी जान पड़ती है। किन्तु वास्तविक रूप से कहावतें दोनों सच्ची हैं। यदि एक शासक नहीं रहा, तो दूसरा कोई बना दिया जायगा, या स्वयं अपने बाहुबल से उठ खड़ा होगा। बिना किसी न किसी प्रकार के शासन के काम नहीं चल सकता। अब इस कसौटी पर दोनों कहावतें खरी उतरेंगी।

यह ध्रुव सत्य है कि भारत में आज 'राजा' नाम की कोई व्यक्ति न देशी देखने में आता है, न विदेशी। किन्तु 'शासन' अवश्य है। किसका ? उत्तर मिलेगा— जनता। वह शासन कैसा है ? उत्तर—"जैसा स्वयं जनता है"। यदि शासन में कोई त्रुटि

है तो दोष किसका ? उत्तर—"जनता का"। वह कैसे ? सुनिये :—

भारत शताब्दियों से गुलाम रहा है। दासत्व के भाव उसकी नस-नस में प्रविष्ट हो गये हैं। दासत्व में और श्वानत्व में विचित्र समत्व पाया जाता है। हम एक-एक टुकड़े के लिये मर मिटते हैं। स्वार्थ का भूत बे-तरह हमारे शिर पर सवार हो गया है। कुछेक महान्-आत्माओं को छोड़ कर, जिनके बल बूते राष्ट्र की नवका सकुशल खेई जा रही है, ऊपर से नीचे तक सब के सब स्वार्थ के नशे में चकाचूर हैं। यदि दूध विषैला, तो मक्खन भी विषैला। शासक वर्ग स्वर्ग से नहीं टपका करते। 'जनता-पय' के वे काम हैं, मक्खन हैं। इसलिये कुछ दिनों ये शिकायतें सुननी ही पड़ेंगी कि अमुक राशनिंग आफ़ीसर लख-पती बन गया। अमुक मिनिस्टर ने इतनी आलीशान कोठियाँ अपने या अपने किन्हीं सम्बन्धियों के नाम बनवा डालीं, या खरीद लीं। कृपया यह तो बताए—ये रिश्वतें देने वाले किस लोक से आ पधारते हैं ? हम ही हैं न ? तब कोसना व्यर्थ ! यह चोर-बज़ारी करने क्या नन्दन-वन-विहारी अमर-गण इस मर्त्य-लोक में आ कूदते हैं ? नहीं। इन सब करतूतों ने हाकिमों को भी कालिमा लगा दी है—अन्यथा उसकी क्या मजाल जो भ्रष्टाचार की ओर झाँक भी सकें।

फिर इस गल्ले को कुठिलों में बन्द करके कौन सड़ाता है ? स्वार्थी किसान ही न ? कांग्रेस के राज्य में सरकारी लगान बाज़ारी भावों के देखते न कुछ के बराबर रह गया है। उसे भी आधा करने का ऐलान वह कर चुकी है। ऐसी दशा में केवल ल्हाया-सरसों आदि में से किसी एक उपज को बेचकर लगान आसानी से चुक जाता है। अतः गेंहूँ आदि खाद्य वस्तुओं

से हाथ नहीं लगाता। उसे भी बनियाँ-वृत्ति सताने लगी है। साल के अंत में चाहे आधे अन्न को पई या घुन भले ही नष्ट कर डाले, पर बाजार ले जाने का नाम नही लेता। क्यों? 'कंट्रौल-भूत' का भय लगता है। अपने अन्न को थान पर ही बेचकर. मन-माने दाम उठाना चाहता है। इसमे क्या करे जवाहर? क्या करे पटैल?? और क्या करे पंडित पंत???

किस-किस का रोना रोयें? क्या मिल मालिक, क्या मजदूर, और क्या व्यापारी वर्ग सब के सब निजी स्वार्थ में रत हैं, राष्ट्र का हित कोई नही सोचता। अंत में बात यही है कि "यथा राज तथा प्रजा"। और राजा आज है जनता! अतः जब तक जनता स्वयं न सुधरेगी, राम-राज्य आ नहीं सकता। राम-राज्य आकाश से नहीं टपकेगा, वह 'जनता-जननी' के उदर से ही उत्पन्न होगा। उसे चाहिये कि अपनी आँख से पट्टी खोले। आज बर्साती मेढकों की तरह पार्टी वालो की बड़ी उछल-कूद देखने मे आ रही है। सब के सब किसान-मजदूरों के हित-साधन का राग अलाप रहे हैं। सिवाय एक दूसरे के छिद्रान्वेषण के काम की बात एक नहीं करता। बस उसकी पार्टी को वोट मिलना चाहिये। जो आज दूसरो पर छींटे उछाल रहे हैं यदि वे ही शासना-रूढ़ होते, तो क्या गारंटी थी कि वे राम के औतार ही होते? सम्भव है वे इनसे भी अधिक बदनाम हो जाते। अतः जनता को बड़ा चौकन्ना हो जाने कि आवश्यकता है। सब्ज बाग सारी पार्टियाँ दिखाएँगी। किन्तु चिकनी-चुपड़ी बातों से भुलावे मे आ जाना बड़ा अनर्थकारी होगा। जो लोग तपे, पके, कसौटी पर कसे और दैनिक-जीवन में आजमाये हों उनको ही आगामी निर्वाचनों में सर्वत्र वोट देना चाहिये। किसी कवि की यह उक्ति सदा ध्यान मे रखिये :—

साग़रे ज़र्रा हों या मिट्टी का हो इक ठीकरा।
तू नज़र कर उस पै जो कुछ उसके अंदर हो भरा॥

२३—राष्ट्र-निर्माण और नवीन वर्णाश्रम व्यवस्था

शरीर अनित्य है किन्तु उसके अन्दर की आत्मा नित्य-वस्तु है यह बात प्रकृति में भी सर्वत्र देखने में आती है। प्रति वर्ष पतझड़ का मौसम आता है, पत्तियाँ सड़ती, गलतीं और खाद बन कर पुनः नवीन पत्तियों के रूप में प्रकट हो जाती हैं। 'रूप' बदलता रहता है, 'तत्व' कभी नहीं नष्ट होता यही बात सांसारिक संस्थाओं की भी देखने में आती है। वर्णाश्रम व्यवस्था भी देश, काल और पात्र के अनुसार बदलती रही है, और भविष्य में भी बदलती रहेगी। किन्तु उसके अंदर जो वास्तविक भावना निहित है उसकी आवश्यकता सदैव एक रस बनी रहेगी।

कौन शिक्षा कला-विशेषज्ञ ऐसा होगा जो यह न स्वीकार करे कि राष्ट्र क बालक बालिकाओं को उनकी स्वाभाविक प्रवृत्तिओं के अनुकूल ही विभिन्न विषयों की शिक्षा-दीक्षा मिलनी चाहिय? और इस बात से भी इंकार नहीं कि स्वाभाविक प्रवृत्तियाँ पैतृक होती हैं। अतः यह आवश्यक हुआ कि इन पृथक-पृथक प्रवृत्तियों के अनुसार ही हमारे बच्चों की शिक्षा-योजना बननी चाहिये। और उन्हे वे सभी बातें हृदयङ्गम करा देनी चाहिये और जिनकी उनके भावी जीवन में आवश्यकता पड़ेगी। उदाहरण के लिये यों समझिये कि जिस बच्चे के अंदर व्यापारी-गृह में उत्पन्न

होने के कारण व्यापारी-प्रवृत्ति पाई जाय उसे मिलीटरी साइन्स (युद्ध-विज्ञान) की शिक्षा देने की आवश्यकता नहीं। विद्यालयों के अन्दर ऐसे समस्त बच्चों को छाँट कर कौमर्स (व्यापार) कला-विशारद बनाने की आवश्यकता है। वे ही आगे चलकर राष्ट्र के कुशल व्यापारी निकलेंगे। फिर यह शिकायत न आयेगी कि माल की पेटी में ईंट-पत्थरों के टुकड़े निकले, अथवा माल खराब निकला।

इसी प्रकार जिन विद्यार्थियों के अंदर शारीरिक बल प्रदर्शन की प्रवृत्ति पाई जाय उन्हें साधारण शिक्षा के साथ-साथ शस्त्र-विद्या विशेष-रूप से सिखानी चाहिये। बिना स्वाभाविक प्रवृत्ति के ठोक-पीट कर न योद्धा बनाया जा सकता है, न पंडित। अनधिकार चेष्टा इसी का नाम है। आज की हमारी शिक्षा-प्रणाली उद्देश्यहीन है। श्रीमद्भगवद्गीता का वाक्य—'स्वधर्मे निधनं श्रेयः परधर्मो भयावहः' का भी यही तात्पर्य है। यदि वैश्य-प्रकृत्ति का व्यक्ति सेना-नायक बना दिया जायगा, या सैनिक-प्रवृत्ति का पुरुष हाईकोर्ट का जज बना दिया जायगा, तो परिणाम भयङ्कर निकलेगा। इसलिये प्राचीनकाल में इस देश के दूरदर्शी ऋषियों ने दार्शनिक रूप से वर्ण-व्यवस्था की नीम डाली। जो बालक जिस प्रकार के काम के लिये उपयुक्त समझा गया उसे उसी प्रकार की शिक्षा-दीक्षा प्रारम्भ से दी जाती थी, जिससे वह आगे चलकर राष्ट्र का योग्य नागरिक बनता था। ऊंच-नीच, या छुटाई-बड़ाई का ऐसा विचार न था जैसा आज देखने में आता है।

वर्ण-व्यवस्था के अनुसार जिन्हें ब्राह्मणत्व की शिक्षा मिलती थी उनका काम राष्ट्र के बालक-बालिकाओं को विद्या पढ़ाना था। वे बड़े त्यागी, तपस्वी और विद्या-व्यसनी होते थे। उनके

विद्यालय प्रायः नदियों के किनारे बस्ती से दूर वन उपवनों में होते थे। राजे महाराजे, धनी साहूकार और साधारण जनता उनकी समस्त आवश्यकताओं को पूर्ण करती थी। ये ही स्थान आगे चलकर तीर्थ-स्थान बने। दान आता रहा। आज भी काफ़ी आता है, किन्तु होता है उसका दुरुपयोग। मनमाना गांजा, चरस और सुल्फा उड़ता है। मदिरा-पान और मांस-भक्षण भी प्रचुर मात्रा में देखा जाता है। समय बदल गया है और उसी के अनुसार हमें समस्त व्यवस्थाएँ बदलनी होंगी। स्कूल और कालिजों में छाँट-छाँट कर योग्य व्यक्ति नियुक्त करने होंगे। यदि वैश्य वृत्ति के व्यक्ति अध्यापक बनाये जाते रहे तो प्राइवेट-ट्यूशनों की भरमार रहेगी और पढ़ाना-लिखाना खाक न होगा जैसा कि आज देखने में आ रहा है। किन्तु साथ ही साथ अध्यापकों का वेतन भी अन्य उच्च पदाधिकारियों के वेतनों के समान आकर्षक बनाने की आवश्यकता है। अन्यथा भूख भिड़ियायी करने के लिये बाध्य होगा ही।

इसी प्रकार क्षत्रिय-प्रवृत्ति वाले विद्यार्थियों को भी प्रारम्भ से ही छांट लेना आवश्यक है। यह कार्य बेसिक स्कूलों से ही प्रारम्भ हो जाना चाहिये। यहीं से उन्हें पुलिस, मिलीटरी, जल-सेना और वायु-सेना विभागों की शिक्षा के लिये रुचि के अनुसार उन-उन के विशेष विद्यालयों में भेजने का आयोजन होना चाहिये, जहाँ से आदर्श पुलिस अफ़सर, नमूने के फ़ौजी कमान्डर और जल और वायु-सेना के कुशल पाइलट प्राप्त हो सकें।

वैश्य-प्रवृत्ति के विद्यार्थियों को कृषि, व्यापार और उद्योग-धन्धों के विद्यालयों में शिक्षा मिलनी चाहिये जिससे अपने-अपने विषयों के आदर्श विशेषज्ञ बनकर निकलें। जो किसी भी शिक्षा-विशेष में भाग न ले सकेंगे वे मिलों, फैक्ट्रियों, कारखानों और

खेती के फार्मों में काम करके राष्ट्र की सेवा करेंगे। खान, पान, वस्त्र, मकान और विद्याध्ययन की सुविधा सबको मिलनी चाहिये। इस प्रकार की बनेगी हमारी आधुनिक वर्ण-व्यवस्था, जो जन्म से न होगी, कर्म और प्रवृत्ति के अनुसार बनेगा, जिसमें प्रत्यक को अपनी योग्यता के अनुसार राष्ट्र की सेवा कर सकने की समान अधिकार होगा।

इसी प्रकार आश्रम-व्यवस्था में भी समयानुकूल हेर-फेर करना अनिवार्य है। आत्मा बनी रहे चाहे उसके ढांचे में कितना ही आवश्यक परिवर्तन करना पड़े। ब्रह्मचर्याश्रम में घर-घर भीक मांगना आज अनुपयुक्त है। अध्यापकों को उचित वेतन देना ही पड़ेगा। हाँ, विद्यालय बस्ती से दूर बनने आवश्यक हैं। गुरु-शिष्यों का बेसिक श्रेणी के उपरान्त छात्रावासों में सहवास आवश्यक है। पच्चीस वर्ष की आयु तक संयमी-जीवन बिताना अनिवार्य है। गृहस्थाश्रम के कर्तव्य कालिज-शिक्षा के आगे होने आवश्यक हैं। सह शिक्षा घातक है। उसक दुष्परिणाम स्वयं सिद्ध हैं। वानप्रस्थी और सन्यासी भी आज की आवश्यकता के अनुसार अनिवार्य हैं।

—:०:—

२४-राष्ट्र-निर्माण और पृथकत्व भावना

"नेहि नानाहि किञ्चन" इस संसार में नानात्व, पृथकत्व, भिन्नत्व जैसी वस्तु है ही नहीं—यह थी उपनिषत्काल की मनोवृत्ति। यही कारण था कि तत्कालीन राजा गर्व के साथ यह कह सकते थे—"न मे जनपदे स्तेनो, न कदर्यो, न मद्यपः, न स्वैरी, स्वैरिणी कुतः ?"

मेरे इस राज्य-प्रदेश में न कोई चोर है, न दुष्ट स्वामी, न शराबी, न कोई व्यभिचारी, फिर व्यभिचारिणी कैसी ?

ये उपर्युक्त सारे काम उस देश में होते हैं जहाँ नाना सम्प्रदाय, नाना प्रकार की समाज, भाँति भाँति की संस्कृति, तरह तरह की भाषा और भावनाएं विद्यमान हों, जिधर देखो उधर पृथकत्व दिखायी देता हो। वहीं स्वार्थपरायणता का साम्राज्य बर्तेगा। आपा-धापी नजर आयेगी। वहीं एक दूसरे को लूट कर धनी बनने की लालसा जागृत होगी। कहीं घन-घना कहीं मुट्ठा चना वाली कहावत चरितार्थ होगी। धन के आधिक्य में भोग-विलास, आलस्य, मद्यपान और फिर व्यभिचार का प्रसार अवश्यम्भावी बन जाता है।

किन्तु जिस देश के लोग समझते हैं कि हमारी एक जाति एक राष्ट्र, एक संस्कृति, एक इतिहास, एक भाषा, एक भूषा है, वहाँ स्वार्थ और पृथकत्व की भावना के लिये स्थान कहाँ? प्रत्येक पुरुष अपना भाई और प्रत्येक स्त्री—निज धर्म-पत्नी के सिवाय—अपनी बहन जब समझी जायगी, तब संसार की सारी खुराफ़ातों, दुष्टताओं का स्वयं अन्त हो जायगा। फिर यह प्रश्न ही न उठेगा कि जमींदारों को मुनाफा का दसगुना दिया जाय, अटगुना दिया जाय या यों ही बिना कुछ मुआवजा दिये लिये उनसे भूमि हड़प ली जाय। न मिल मालिकों और मजदूरों के प्रश्न उपस्थित होंगे। एक दूसरे की आवश्यकताएँ भर-पूर पूरी होंगी। लाल-टोपी और लाल झंडे रङ्ग कर लाल खून बहाने की आवश्यकता ही न पड़ेगी। लाल झंडे के नीचे जम-घट भूका-पेट, नङ्गा शरीर, खरदिमाग़ी, शैतानी-सलाह—अथवा यों कहिये स्वार्थ और पृथकत्व की भावना ही कराती है।

यदि शताब्दियों से साथ-साथ रहने वाले, प्रायः एक ही जाति के अंश! एक खून! एक ही देश में जन्म लेने और मरने

वाले! एक ही आबहवा में परवरिश पाने वाले! हिन्दू और मुसलमानों के अन्दर दो नेशनों की भावना न भड़कायी गयी होती, तो क़ायदे आज़म के शिर पर बैठे बिठाए भूत सवार न होता जिससे लाखों क़ीमती जानें गयीं, और करोड़ों की सम्पत्ति का नाश हुआ। और अभी कौन जाने आगे क्या-क्या कुछ देखना पड़े?

परमेश्वर को हज़ार बार धन्यवाद! और सरदार पटैल की विलक्षण कौटिल्य-कला को अनेकशः साधुवाद!' इन राजा-महाराजा, नवाब और आली जाहों का मसला बड़ी सहूलियत से तै हो गया। नहीं तो न जाने कितना ख़ून-खच्चर और होता। अब एक छोटा-सा मामला ज़मींदारों का और रह गया है उसे भी हँसी खुशी हो जाने देना चाहिये। इस देश-हित के कार्य में रोड़े अटकाकर किसी भले आदमी को आगामी चुनावों में वोटें बटोरने का साधन न बनाना चाहिये। जब राजा और नवाबों को लाखों की वार्षिक पैंशन दी गयी है तो इन बिचारे ज़मींदारों की गर्दन पर कुठाराघात किस लिये? इनके भी आँसू पुछ जाने दिये जायँ। न्याय यही चाहता है। कांग्रेस गवर्नमेंट सबकी असली माँ है—विदेशी मौसी नहीं। उसमें त्रुटियाँ हैं, और अभी रहेंगी भी जब तक कि हम सच्चे नागरिक न बन लेंगे; किन्तु वह देशद्रोही कदापि नहीं। चाहती राष्ट्र का कल्याण ही है। उसे सहयोग और नेक सलाह हर सच्चे देश-हितैषी को खुले दिल से देते रहना चाहिये।

अन्त में एक शब्द प्रान्तीयता और साम्प्रदायिक भावनाओं के लिये भी कहना पड़ा। मुझे ऐसा लगता है कि जान बूझकर चाहे अनजान में, जो लोग इस विशाल राष्ट्र में पृथकत्व की भावना स्वार्थवश जागृत करते हैं वे भी कायदे आज़म के पद-

चिन्हों का अनुसरण कर रहे हैं, और वे नव निर्मित भारत संघ का हित-साधन नहीं कर रहे। उन्हें विशाल-हृदयता से काम लेना चाहिये।

२५—राष्ट्र-निर्माण और समाचार पत्र

प्रचार के—या यों कहिये किसी राष्ट्र या जाति के जीवन और मरण के—अध्यापक, उपदेशक और समाचार-पत्र ही तीन प्रधान साधन हैं। जनता बिचारी सर्वत्र और सब काल में इन्हीं तीनों के आश्रित और मुखापेक्षी रहती है। 'लन्दन-टाइम्ज़', 'शिकागो हैरल्ड', 'हिन्दोस्तान टाइम्ज़', 'अमृत बाजार पत्रिका', 'अर्जुन', और रूस की 'प्रवदा' आदि-आदि ये पत्र-पत्रिकाएँ आज विश्व का संचालन कर रही हैं। स्याह का सफेद और सफेद का स्याह कर दिखाना इनके बाएँ हाथ का खेल है। इनके सम्पादकों के मस्तिष्कों में देव-दूतों, अथवा मार्ग भ्रष्ट करने वाले खुदावन्द करीम के कट्टर शत्रु शैतान वाली ग़ज़ब की शक्ति भी सन्निहित रहती है। ये जब चाहें तब खुदा की उम्मत के क़दम जिन्नत की तरफ से जहन्नुम की तरफ़ मोड़ सकते हैं। सम्पादक की लेखनी में वह जादू है कि बात की बात में स्थायी से स्थायी गवर्नमेंट का तख्ता पलट दे। साधारण पब्लिक में इतनी बुद्धि कहाँ जो अपनी निजी निश्चित सम्मति बना सके। वह सदा प्रसिद्ध अखबारों की सम्मति जानने के लिये उत्सुक रहती है। देश के विभाजन के लिये लीगी-पत्रों ने जैसा-जैसा विष जनता में उगला और उसका जो भयङ्कर परिणाम निकला उससे आज कौन अपरिचित होगा?

भारतीय-राष्ट्र अभी कल का बच्चा है। इसके लालन-

पालन और यथावत् संवर्द्धन की बड़ी आवश्यकता है। इसको सभी प्रकार के कु-संस्कारों से सुरक्षित रखना अनिवार्य है। भवन-निर्माण की भाँति ही राष्ट्र-निर्माण की नींव भी सु-दृढ़ रखनी आवश्यक है। इसके लिये भी कुशल से कुशल निर्माताओं की समस्त शक्तियों का प्रयोग अभिलाषित है। इस समय की भूल और उपेक्षा आगे चलकर अत्यन्त हानिकर सिद्ध होगी। इस समय देश में विभिन्न दिशाओं से धार्मिक, सामाजिक, साम्प्रदायिक, प्रान्तीय, आर्थिक और राजनैतिक झन्झावात-सा बह रहा है। ऐसे भयङ्कर बवन्डर में राष्ट्र की नवका बड़े धैर्य और कौशल से खेने की आवश्यकता है। उसके कुशल मल्लाहों के मार्ग में नित नये विघ्न उपस्थित करते रहना और कुतर्कों द्वारा जा और बेजा आलोचना करना राष्ट्र-हित नहीं। आलोचना करना बुरा नहीं, किन्तु वह उचित और सद्भावना-पूर्ण होना चाहिये। गवर्नमेंट का भी कर्तव्य है कि वह राष्ट्र-हित के सुझावों को ध्यान पूर्वक सुने, मनन करे और उन्हें कार्य रूप में परिणित करने का प्रयत्न करे।

ऐसी परिस्थिति में भारतीय-समाचार-पत्रों का कर्तव्य और भी जटिल हो जाता है। उनमें से कई एक प्रमुख-पत्र पूँजी पतियों से सम्पर्क रखते हैं। साम्प्रदायिक-पत्रों की भी न्यूनता नहीं। बहुत कम ऐसे हैं जो स्वतंत्र व्यक्तियों द्वारा संचालित हैं और जिनका मुख्य ध्येय राष्ट्र के पावन-निर्माण-कार्य में सहायता प्रदान करना मात्र है। कुछ भी हो आत्मा का क्रय-विक्रय करना किसी भी दशा में वाञ्छनीय नहीं। स्वार्थवश आत्मा का हनन करना राष्ट्र-निर्माण के लिये घातक सिद्ध होगा। पत्र-सम्पादकों को विशेषतया अपने कर्तव्य-पथ पर आरूढ़ रहने की अत्यन्त आवश्यकता है। राष्ट्र-कल्याण जितना उनपर निर्भर है उतना अन्य किसी पर नहीं। वर्तमान युग में उनका

उत्तरदायित्व सबसे अधिक है। 'अग्र-लेख' लिखते समय उन्हें यह कभी विस्मरण न करना चाहिये कि उनकी लेखनी राष्ट्र-हित में विष वमन तो नहीं कर रही। उनके सभी सुझाव गंभीर और कल्याण साधक होने चाहिये यह बात निर्विवाद सिद्ध है कि वे राष्ट्र को जैसा बनाना चाहेंगे वह अवश्य वैसा बन जायगा।

इन्हीं का अनुकरण अध्यापक और उपदेशकों को करना आवश्यक है। बहुत से ग्राम ऐसे भी हैं जहाँ अच्छे समाचार-पत्रों का पहुँचना दुर्लभ है, वहाँ अध्यापक, उपदेशक और मध्यम श्रेणी के पढ़े-लिखे लोग ही जनता को सन्मार्ग पर चलाने का प्रयत्न कर सकते हैं। देश की इस विकट परिस्थिति में किसी भी समझदार पुरुष वा स्त्री को चुपचाप न बैठना चाहिये। राष्ट्र-निर्माण का कार्य 'ब्रज' के गोवर्धन-धारण करने के सदृश है। सभी को मिलकर अपनी अपनी शक्ति के अनुसार राष्ट्र के दुर्गुण, दुर्व्यसन और वर्तमान आपा-धापी को उखाड़ फेंकने का भागीरथ प्रयत्न करना चाहिये। कृपालु परमेश्वर हम सबको सन्मार्ग सुझाने की कृपा करें।

—:•:—

२६—राष्ट्र-निर्माण और आर्यसमाज

यह बात आज निर्विवाद सिद्ध है कि स्वदेश में स्वराज का स्वप्न सब से पूर्व आर्य समाज के प्रवर्तक स्वामी दयानन्द सरस्वती ने ही देखा। स्वदेश की दुर्दशा को देख जितनी वेदना उन्हें हुई उतनी कदाचित् ही किसी अन्य महापुरुष को हुई हो। देश-हित के लिये समाधि के ब्रह्मा-नन्द का त्याग करने वाला केवल-मात्र दयानन्द ही था। कुमार अवस्था से लेकर मरण-

पर्यन्त उनका समस्त जीवन देश-हित-साधन में व्यतीत हुआ।
उनके गुरुदेव स्वामी विरजानन्द सरस्वती ने अपनी प्रखर-ज्योति
से उनके निर्मल हृदय को और भी अधिक प्रज्वलित कर दिया।
स्व-धर्म, स्वभाषा और स्व-संस्कृति-प्रचार का जो भागीरथ
प्रयत्न दयानन्द और उसकी आर्य समाज ने किया वह राष्ट्र-
निर्माण के भावी इतिहास में स्वर्णाक्षरों में लिखा जायगा।
काँग्रेस के जन्मकाल से लेकर विश्व-वन्दनीय महात्मा गांधी के
स्वर्गारोहण के क्षण तक कोई महत्त्वपूर्ण कार्य ऐसा नहीं हुआ
जिसके लिये आदित्य ब्रह्मचारी महर्षि दयानन्द सरस्वती ने
अपना खून-पसीना एक न किया हो। स्वराज-सड़क के झाड़
खार-खड्डों का प्रथम साफ़ करने वाला दया-निधि दयानन्द और
उसकी आर्य समाज ही है।

आदर्श राष्ट्र-निर्माण का गुरुतर कार्य भी दयानन्द-निर्दिष्ट
मार्ग के अनुसरण द्वारा ही सम्पादित हो सकेगा, अन्य साधनों
द्वारा बालू पर भवन बनाने के प्रयासवत् होगा। आज के फैले
विषैले भ्रष्टाचार के विरुद्ध चहुँ ओर चिल्ल यों तो काफी सुनी
जारही है। विविध प्रकार के दंड दिये जारहे हैं, कारावास
किया जा रहा है, कानून भी बनाये जा रहे हैं। किन्तु एक दो
फोड़े हों तो मरहम-पट्टी से काम चले, भयङ्कर चेचक की चिकि-
त्सा इस प्रकार नहीं की जा सकती। मान लीजिये चेचक भी
आपने येन केन प्रकारेण शान्त करली, अन्य और कोई रोग
उठ खड़ा होगा। कुपथ्य और बेढंगा जीवन बिता कर बकरे की
माँ कब तक खैर मनायेगी। अतः बीमार को प्राकृतिक और
आरोग्य-मय जीवन बिताने की शिक्षा दिये बिना काम चल
ही नहीं सकता, और वह भी धार्मिक-भावना से परिपूर्ण श्रद्धा
और भक्ति के साथ।

किन्तु क्या यह कार्य आज के उच्छृङ्खल वायुमण्डल में

काम्रेस कर सकेगी ? सोशैलिज्म कर सकेगा ?? कम्यूनिज्म या अन्य कोई इज़्म कर सकेगी ??? मैं समझता हूँ नहीं, हरगिज़ नहीं। क्यों नहीं ? इसका कारण है। उन्हें फ़ुर्सत ही नहीं। वे लोग एक दूसरे पर लाँछन लगाने, छिद्रान्वेषण करने और और अवसर अनावसर परस्पर छींटे छिड़कने में संलग्न हैं। उन्हें चाहिये आगामी चुनावों में चुनी-चुनाई वोटें। और आधिक्य है देश में किसान और मजदूरों का। अतः सब के सब किसान और मजदूरों के हित-साधन के गीत गाने में बेक़रार दिखाई दे रहे हैं। राष्ट्र-निर्माण की सुध किसे आये ? त्याग, तपस्या, कर्तव्य-पालन, राष्ट्र-सेवा, धर्म, ईश्वर-आज्ञा आदि को ये लोग बाबा आदम के ज़माने का ढोंग समझते हैं।

अतः यह आवश्यक कार्य उसी संस्था द्वारा सम्पन्न होना सम्भव है जिसका जन्म ही निस्स्वार्थ-भाव से न केवल अपने राष्ट्र का अपितु समस्त संसार के उपकार के लिये हुआ हो। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' ही जिनका एक मात्र प्रमुख जय-घोष (नारा) है। जिसने विश्व के अनाचार, दुष्टाचार और भ्रष्टाचार को भगाकर मानव-समाज को सज्जन, सदाचारी और ईश्वर-भक्त बनाने के लिये भरसक प्रयत्न करने का बीड़ा उठाया हुआ है।

चेतावनी भी भुक्त-भोगी श्री नरदेव शास्त्री जी की सामायिक हुई है—'मत चूके आर्यसमाज'। तुझे अपनी कोई निजी कुल्हाड़ी भी पैनी नहीं करनी। वोटें बटोरने की बीमारी से भी तू मुक्त है। कंटकाकीर्ण मार्गों में भ्रमण करने का तुझे काफ़ी अनुभव है। कई बार प्रशंसनीय विजय-श्री के दर्शन भी प्राप्त कर चुका है। फिर आज तो मार्ग निष्कंटक पड़ा हुआ है। 'बाधा' नाम की कोई वस्तु रह ही नहीं गई। समस्त वायुमण्डल अनुकूल ही

अनुकूल है और न हो अनुकूल ! उसे अनुकूल बनाना भी तो तेरा ही काम है। अतः समय रहते सारी शक्ति राष्ट्र-निर्माण-कार्य में लगा दे। तुझे 'गर्भाधान-संस्कार' से लेकर मानव-जीवन सु-संस्कृत बनाने का अनथक प्रयत्न करना होगा। सत्य-संकल्प चाहिये, साधन जगन्नियन्ता जगदीश स्वयं जुटावेंगे। आर्य समाज के समस्त विद्वानों को नाम के चाहे नहीं किन्तु काम-के वानप्रस्थी और सन्यासी अवश्य बन जाना चाहिये। संगठित-रूप से उनसे काम लेने का महान कार्य प्रान्तीय और सार्वदेशिक आर्यसमाजों को कुशलता-पूर्वक चाहिये। स्थानीय आर्यसमाजों को भी तन-मन-धन से उक्त संस्थाओं की सहायता करनी चाहिये। वार्षिक उत्सवों की धूम-धाम काफ़ी होती। अब ठोस काम करने की बारी आई है। वाह्य-प्रदर्शन की अब नितान्त आवश्यकता नहीं। अब समारोह भी कार्य-प्रणाली निश्चित करने, कार्यकर्ता ट्रेन करने और विविध प्रकार के साधन खोज निकालने के ही लिये होने चाहिये; उत्सव-मात्र के लिये नहीं।

२७—स्थिर-राष्ट्र-निर्माण का वैदिक-नुस्ख़ा

सत्यं बृहद् ऋतमुग्रं दीक्षातपो ब्रह्मयज्ञः पृथिवीं धारयन्ति।
सा नो भूतस्य पत्न्युरुं लोकं पृथिवी नः कृणोतु ॥
(अथर्व० पृथिवी सूक्त, मं० १)

अबसे पचास वर्ष पूर्व की बात है। तहसीली स्कूल कोल (अलीगढ) में पढ़ता था। महारानी विक्टोरिया का राज था। वृद्ध-जन, विशेषतया पंडित जी कहलाये जाने वाले लोग, उसे रावण के पुत्र, मेघनाद की पत्नी, सुलोचना का अवतार बताया

करते थे। कहते थे कि भगवान रामचन्द्र ने उसके प्रतिव्रत-धर्म से प्रसन्न होकर उसे चार पीढ़ी तक भारत में राज करने का वरदान दिया था। ऐसी बातों को सुन-सुनकर बड़ा आश्चर्य हुआ करता। प्रजा बड़ी प्रसन्न थी। मन-मानी, घर-जानी कहीं देखने को न मिलती थी। भारतीयों के बीच न्याय करने में काफ़ी छान-बीन की जाती थी। ऐसा धारणा बन चुकी थी कि कंचहरियों में दूध-का-दूध और पानी-का-पानी पृथक कर दिया जाता है। लोगों में भी प्राचीन धर्म-भीरुता की कोर शेष थी। कचहरी में गंगाजली उठाते ही हाथ काँप जाता था और सत्य बात ही मुख से निकल पड़ती थी। साधारण लोगों के मुख से सुना जाता—भाई! अगरेजों के राज में शेर-बकरी एक घाट पानी पीते हैं। सोना उछालते चले जाओ। किसकी मजाल जो आँख उठाकर भी देख सके?

ग्रामों की दशा भी अच्छी थी। मजदूर को एक दिन के दो आने मिलते थे जिसकी पांच सेर बेझड़ आजाती थी। स्त्री-मजदूर को छै पैसे और बालक-मजदूर को चार पैसे मिल जाते थे। रुपये का ढ़ाई सेर घी खालिस मिल जाता था। दूध बेचना पाप समझा जाता था। गाँव में किसी के भी यहाँ शादी-ब्याह या कोई अन्य कार्य होता तो मन-माना दूध-दही और मट्ठा मुफ़्त मिल जाता था। बढ़िया मलमल दो-ढाई आने गज और मारकीन पुरानी-चाल की, बढिया किस्म की डेढ-दो आने गज़ बिकती थी। ये चीजें 'घरऊ' यानी विशेष अवसरों पर पहनने योग्य समझी जाती थीं। साधारणतया घर-कते सूत और गाँव के कोली द्वारा बुने वस्त्रों का ही प्रयोग होता था। सौ-सवा सौ रुपयों में अच्छा खासा विवाह हो जाता था। दो-चार मुख्य जेवरों की आवश्यकता पड़ती थी, सो भी मँगेंनू (मांगने पर) मिल जाते थे। लोग अधिकतर ईमानदार थे। चोरियां बहुत कम

होती थीं। यदि किसी दूर के शहर में कभी डाका पड़ गया तो हल्ले मच जाते थे।

किन्तु ज्यों-ज्यों समय बीतता गया, गवर्नमेन्ट की चाल बदलती गयी। प्रजा-शोषण की नीति में वृद्धि हुई। विदेशी वस्तुओं का प्रचार दिन-दूना रात चौगुना बढ़ाया गया। देशी पाठशालाओं का प्रचार बन्द हुआ, और उनका स्थान यत्र-तत्र सरकारी मदरसों ने ग्रहण किया। कलकत्ता, बम्बई और मदरास की प्रेज़ीडेंसी कालिजों को यूनीवर्सिटों का स्वरूप दिया गया। लार्ड मैकौले ने अँग्रेज़ी को शिक्षा का माध्यम बना, हिन्दुस्तानी बाबुओं को गोरे-साहबों की नक़ल के पूरे-सोलह आना काले साहब बना डाला। फ़ैशन की बावन तोले पाव रत्ती नक़ल की गई। किन्तु गुलामों ने अपने गौरांग महाप्रभुओं के गुणों में से एक की भी नक़ल न की। क्लाइव की वीरता और देश-भक्ति, वार्नहेस्टिंगज़ के अध्यवसाय और डलहौजी की दूर-दर्शिता से सदा दूर रहे। उनके स्थान में श्वान-वृत्ति यानी अपनों से गुर्राना और गैरों के जूते चाटना और उनके पैरों पर लौटकर पेट दिखाना आदि दुर्गुण और दुर्व्यसन सीख लिये। फल वही हुआ जो होना था। अधोगति अन्तिम दशा को पहुँच गयी।

पाठक प्रवर! एक बात आपको स्पष्ट दिखायी देती होगी। यदि शासकों की नीयत शुद्ध और निर्मल, तो प्रजा सुखी और शान्त! यदि सरकारी अफ़सर बेईमान और प्रजा-पीड़क, तो प्रजा दुखी, अशान्त और क्रान्तिकारी अवश्य होगी। कांग्रेस का जन्म भी इसी कारण हुआ। और अब सोशलिज़्म और कम्यूनिज़्म की जननी भी वही बेईमानी, स्वार्थपरता, असमानता, कन्ट्रोलों की गर्दामर्दी, वेतनों की न्यूनता, भावों की अत्यधिक

मँहगी और चोर बाजारी आदि है। फिर इन नित नयी बीमारियों का अन्त क्योंकर किया जाय ?

केवल वेदों की कल्याणी-शिक्षा का प्रसार ही इन समस्त नित नयी बढ़ती बीमारियों की राम-बाण महौषधि है। देखिये कैसी सुन्दर चिकित्सा बतायी गयी है—

(१) (बृहत् सत्यम्) उच्चकोटि का सत्य, छल-कपट और वर्तमान पौलिसी मिश्रित सत्य नहीं (२) (उग्रं ऋतम्) दूसरों के rigth का उचित अधिकारों और स्वत्वों का उत्कट ध्यान (३) (दीक्षा) कार्य-कुशलता (४) (तपः) कर्तव्य-परायणता, कठोर परिश्रम (५) (ब्रह्म-यज्ञः) विद्या और ज्ञान प्रसार के लिये तन-मन और धन का स्वाहा करना।

उपर्युक्त पाँच बातें (पृथिवीं धारयन्ति) इस वसुन्धरा को धारण करती है, राष्ट्रों को पतित होने से बचाती हैं, उन्हें दृढ़ और स्थायी बनाती हैं।

(सा पृथिवी) इस प्रकार से सुरक्षित जननी जन्म-भूमि। (नः) हमको (भूतस्य) प्राचीन गौरव और महानता की (भूत्यस्य) भावी उत्कर्ष और ऐश्वर्य की। (पत्नी) पालिका, स्वामिनी, रक्षिका (नः) हमारे लिये संसार में (उरू लोकम्) उन्नति का बड़ा विस्तृत क्षेत्र (कृणोतु) कर देगी फैला देगी।

परमेश्वर करे, भारतीय महाराष्ट्र के शिक्षित और प्रबुद्ध नागरिक अपनी प्रभु-प्रदत्त इस स्वतंत्रता को सुरक्षित रखने का तन-मन-धन और निस्वार्थभाव से उत्कट प्रयत्न करें। किन्तु यह होगा तभी जब उपर्युक्त वैदिक शिक्षानुसार कार्य होगा।

परन्तु इस प्रकार की शिक्षा का प्रसार कांग्रेस सरकार कर नहीं सकती, और नहीं कर सकती है कोई अन्य संस्था।

वैदिक ज्ञान का विश्व में प्रसार करने की दुन्दभी आर्यसमाज ही बजाती है। 'कृण्वन्तो विश्वमार्यम्' तो पीछे की बात रही, पहले 'कृण्वन्तो स्वदेशमार्यम्' पर ही शक्ति की परीक्षा करनी आवश्यक है। समय भी अनुकूल आ गया है। प्राचीन आर्य संस्कृति के प्रचार पर किसी प्रकार की रुकावट भी नहीं है, और अगर बाधाएँ उपस्थित भी हों तो उनका भी सामना करना चाहिये। चुप और निष्क्रिय बैठे रहे तो महान् अनर्थ हो जायगा। चहुँ ओर भेड़िये ताक लगाये बैठे हैं। अबोध भारतीय जनता रेवड़ से बहतर नहीं। इसकी रखवाली का उत्तरदायित्व महर्षि ने आर्यसमाज को सौंपा है। जनता को भी उसके साथ सहयोग करना चाहिये। तब ही सच्चा राम-राज्य स्थापित हो सकेगा। वही स्थिर भी रह सकेगा।

स्वयं " स्कृत

संस्कृत-प्रबोध

पाठक प्रवर ! जिस 'राष्ट्र-निर्माण' नामक उपयोगी पुस्तक को आपने सभी समाप्त किया है उसी के लेखक लब्ध प्रतिष्ठ, ४० वर्ष का प्रचुर शिक्षण-अनुभव प्राप्त, विद्वान् प्रवर श्री प्रो० किशोरी लाल गुप्त एम० ए०, साहित्यवाचस्पति, सिद्धान्तशास्त्री, काव्यतीर्थ के द्वारा यह पुस्तक 'संस्कृत-प्रबोध' भी लिखाई गई है। चतुर पाठक पहिले ही दिन से संस्कृत के छोटे छोटे वाक्य बनाने लग जाता है। व्याकरण के सूत्र रटने की आवश्यकता नहीं पड़ती। उनके नियम सरल हिन्दी द्वारा यथा स्थान समझाये गये हैं। नवीन शिक्षण-कला का प्रचुर प्रयोग किया गया है। मू० दो भाग प्रचारार्थ ॥=) मात्र।

कतिपय प्रतिष्ठित सम्मतियों के उद्धृतांश पढ़िये :—

'संजय', दिल्ली—"× × × स्वयं संस्कृत सीखने के लिये यह पुस्तक बहुत ही सरल और श्रेष्ठतम् साधन है। × × × जिनके पास थोड़ा-सा भी समय संस्कृत-सीखने को हो वे इस परमोपयोगी पुस्तक से लाभ उठायेंगे। × × × हिन्दी रत्न, भूषण और प्रभाकर के छात्र एवं छात्राओं को तो इस पुस्तक से विशेष लाभ उठाना ही चाहिये। × × × ऐसी परमोपयोगी पुस्तक का मूल्य बहुत ही कम है × × ×।"

श्री देवीचरण जी आचार्य, महाविद्यालय, साधु-आश्रम—"× × मुझे यह पुस्तक अत्यन्त रुचिकर सिद्ध हुई। संस्कृत जैसी क्लिष्ट भाषा को सरलतम्-रूप प्रदान करना प्रोफ़ेसर जी जैसे विद्वान एवं सफल लेखक का ही कार्य है × × इसमें इस बात का पूर्ण ध्यान रक्खा गया है कि छात्र की अभिरुचि उत्तरोत्तर बढ़ती ही रहे। यह अत्यन्त उपयोगी है × × ×।"

पता—गोविन्द ब्रदर्स, पुस्तक विक्रेता, अलीगढ़।